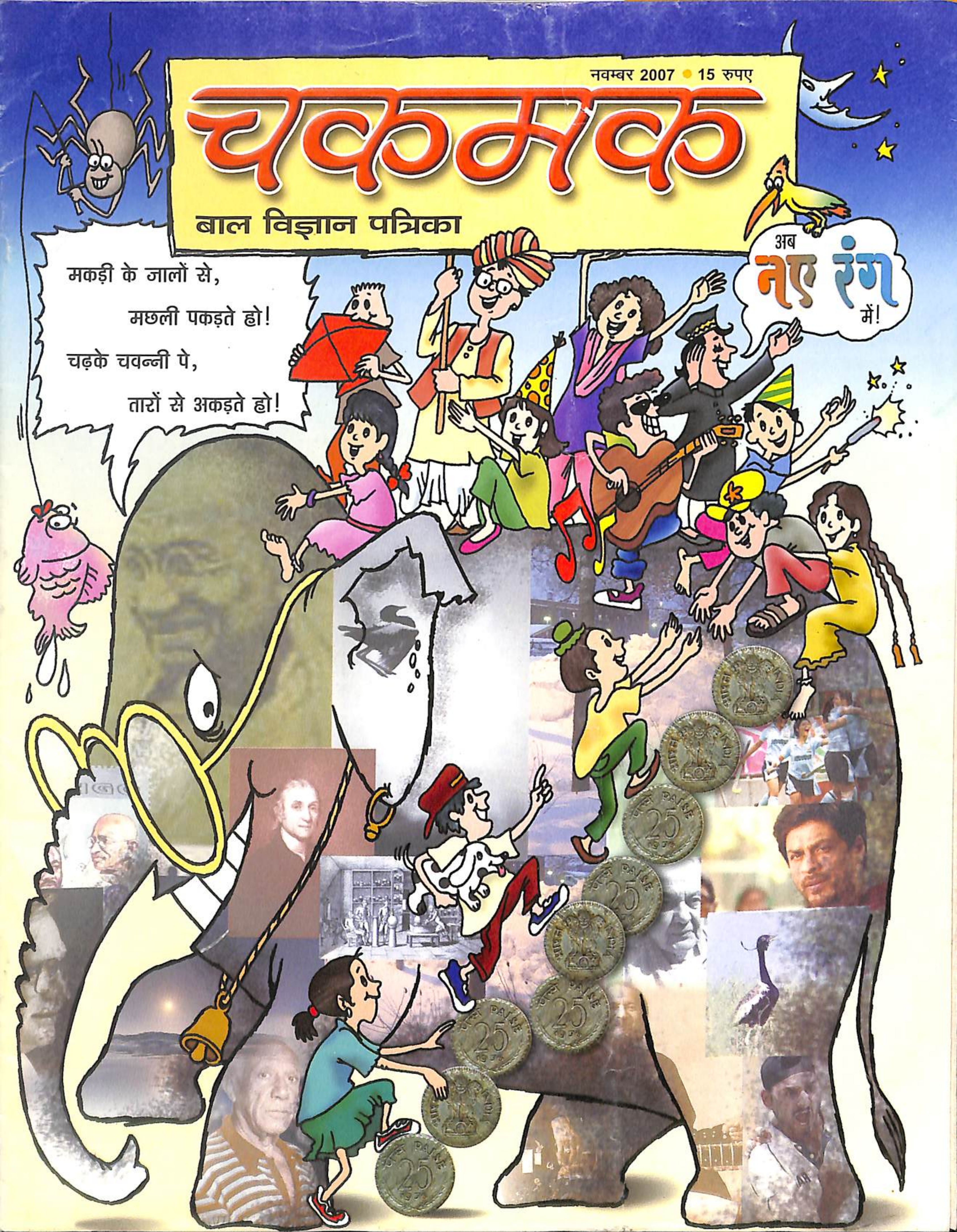
नवम्बर 2007 • 15 रुपए
चकमक
बाल विज्ञान पत्रिका
मकड़ी के जालों से,
मछली पकड़ते हो!
चढ़के चवन्नी पे,
तारों से अकड़ते हो!
अब नए रंग में!

एक सच्ची कहानी....

बोलो मुझमें कितने रंग हैं?
मेरा नाम भी वही है।

क्या दोस्त हैं हम!

यह एक छोटे से बच्चे की कहानी है – एक साल से भी छोटे हिप्पो ओवन की। इसका वज़न है ३०० किलो। एक दिन यह न जाने कैसे सबाकी नदी में बहते-बहते हिन्द महासागर में जा पहुँचा। सबाकी कीनिया (मध्य अफ्रीका) की दूसरी सबसे बड़ी नदी है। जब वहाँ सुनामी आई तो ऊँची लहरों ने इस नन्ही-सी जान को वापस कीनिया के तट पर ला पटका। कीनिया के वन्यजीव रेंजरों ने इसे बचाया तब यह गहरे सदमे में था। ओवन किसी साथ-सहारे की तलाश में था।

तभी उसकी मुलाकात हुई एक सौ साल के नर कछुए से। दोनों में गहरी दोस्ती हो गई। उनका खाना, सोना, तैरना सब साथ-साथ होने लगा। ओवन कछुए के पीछे-पीछे वैसे ही चलता है जैसे वह कभी अपनी माँ के पीछे चलता होगा। अगर कोई उसकी माँ के पास आए तो वह उसे बचाने के लिए उग्र हो जाता है। हिप्पो सामाजिक प्राणी होते हैं। और लगभग चार साल तक अपनी माँ के साथ रहते हैं।

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका • 254 • नवम्बर 2007

दोस्तो,

चकमक नई सजधज के साथ पेश है।

उम्मीद है नए-नए विषयों पर तरह-तरह के स्वाद की सामग्री के साथ यह सफर दिन-ब-दिन और सुहाना होता जाएगा।

सुशील शुक्ल

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सम्पादकीय सलाहकार
रैक्स डी रोज़ारियो
तेजी ग्रोवर

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

डिज़ाइन
अतनु राय
डिजिटल एक्सप्रेशन्स

वितरण
अनिल लोखण्डे
कमल सिंह

सदस्यता शुल्क

एक प्रति - 15.00
वार्षिक - 150.00
दो साल - 275.00
तीन साल - 400.00
आजीवन - 1500.00
सभी डाक खर्च हम देंगे।

सदस्यता शुल्क मनीऑर्डर से या एकलव्य के नाम बने चेक/डिमाण्ड ड्राफ्ट से भेज सकते हैं। भोपाल के बाहर के चेक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई- 10, शंकर नगर
बी डी ए कॉलोनी, शिवाजी नगर
भोपाल, म.प्र. 462016
फोन-(0755) 6549033
chakmak@eklavya.in
www.eklavya.in

इस अंक में....

चित्रकथा 2
ऑक्सीजन की खोज 4
चकदे! इण्डिया 6
हरे पत्ते के रंग की पतरंगी 8
मूसल से मुक्ति 14
बिना नाम की नदी 16
रुस्तम की दो कविताएँ 17
मेरा पन्ना 19
मन में झाँकने की खिड़की... 20
अभी रात ही थी जब... 22
संगीत की वो शाम 26
गांधी जी की प्रिय किताब 29
पुस्तक अंश 30
गांधी जी पर टिकट 30
तुम भी बनाओ 32
चित्र पहेली 33
फ से... 34
मेरा पन्ना 35
नाक कंगन को... 38
खरमौर 40

व कई अन्य रोचक कॉलम

सतीनाथ षडंगी

बड़ी मुश्किल है...

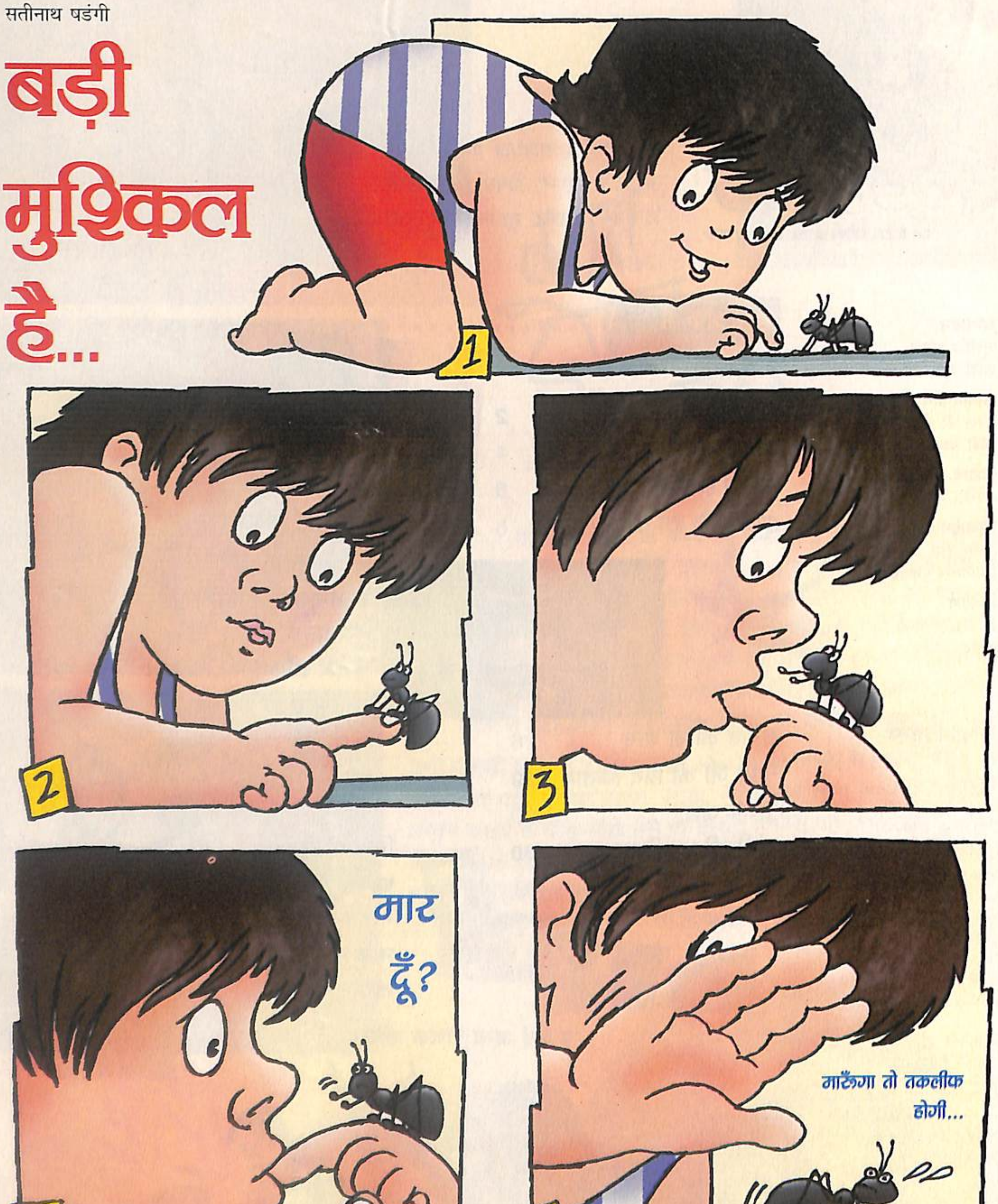

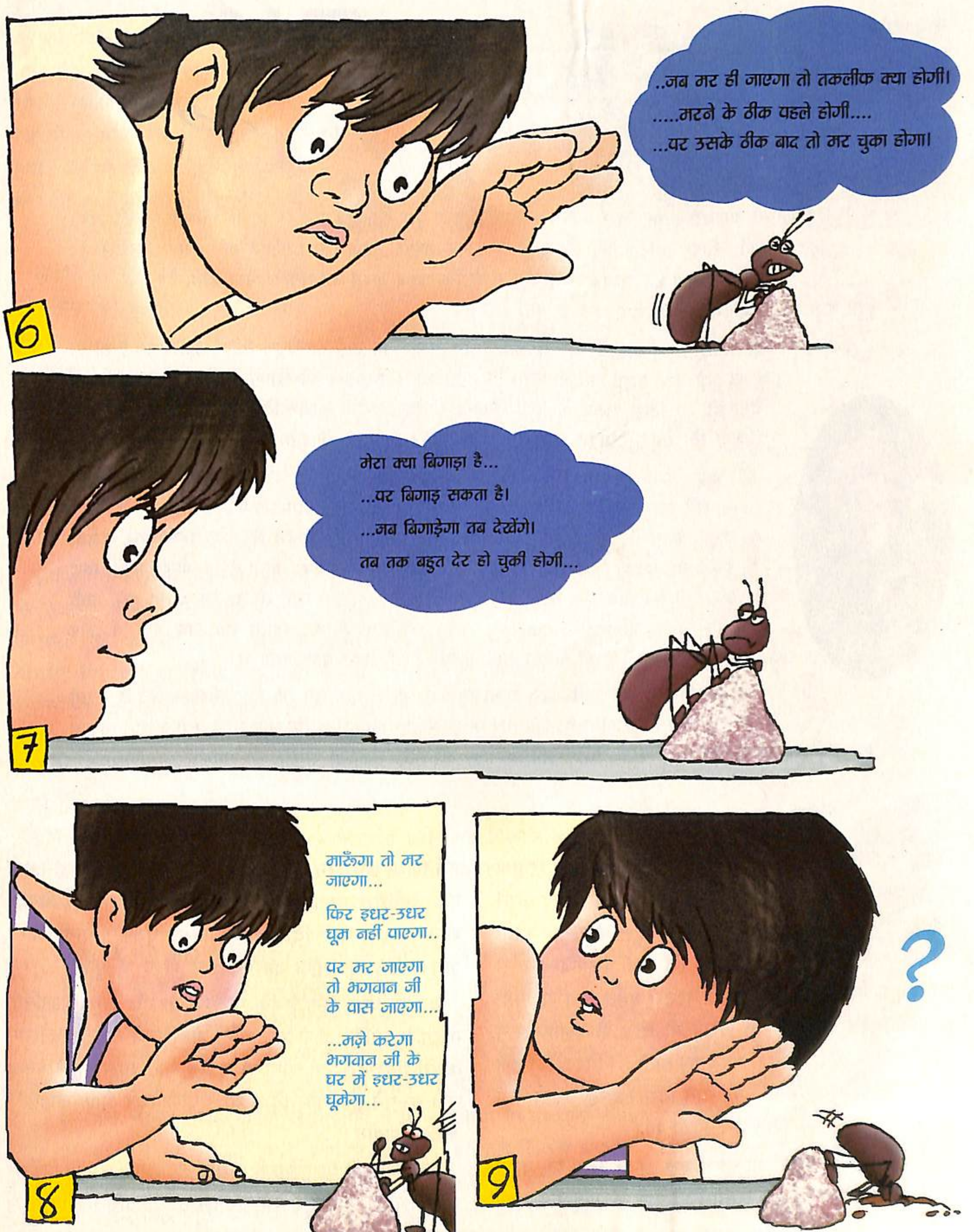
6
..जब मर ही जाएगा तो तकलीफ क्या होगी।
.....मरने के ठीक पहले होगी....
...पर उसके ठीक बाद तो मर चुका होगा।
7
मेरा क्या बिगाड़ा है...
...पर बिगाड़ सकता है।
...जब बिगाड़ेगा तब देखेंगे।
तब तक बहुत देर हो चुकी होगी...
8
मारूँगा तो मर जाएगा...
फिर इधर-उधर घूम नहीं पाएगा..
पर मर जाएगा तो भगवान जी के पास जाएगा...
...मज़े करेगा भगवान जी के घर में इधर-उधर घूमेगा...
9
?

सुशील जोशी

ऑक्सीजन की खोज किसने की थी?

तुम्हें शायद आश्चर्य होगा कि मैं अब यह सवाल क्यों पूछ रहा हूँ। सब जानते हैं ऑक्सीजन की खोज 225 से भी ज़्यादा साल पहले हो चुकी है। और उसके खोजकर्ता इंग्लैण्ड के जोसेफ प्रिस्टले हैं। दरअसल इस सवाल का सम्बन्ध इस बात से है कि खोज करने का मतलब क्या होता है। इसी बात को मैं ऑक्सीजन के उदाहरण से बता रहा हूँ।

नोबल पुरस्कार 1901 में शुरू हुआ था। मगर रसायन शास्त्र की कई महत्वपूर्ण खोजें उससे पहले ही हो चुकी थीं। तो कुछ वैज्ञानिकों ने सोचा कि यदि 1901 से पहले की खोजों के लिए नोबल पुरस्कार देना हो, तो किस खोज के लिए मिलना चाहिए। काफी सोचने-विचारने के बाद उन्होंने तय किया कि यह पुरस्कार ऑक्सीजन की खोज के लिए मिलना चाहिए। आखिर क्यों?

जोसेफ प्रिस्टले

कई वैज्ञानिक मानते हैं कि सही मायनों में आधुनिक रसायन शास्त्र की शुरुआत ऑक्सीजन की खोज से ही हुई है। ऑक्सीजन की खोज से पहले लोग मानते थे कि जलने वाली चीज़ों में एक पदार्थ होता है जिसे वे फ्लॉजिस्टन कहते थे। जब कोई चीज़ जलती है तो यह पदार्थ निकलता है। जब पूरा फ्लॉजिस्टन निकल जाता है तो चीज़ जलना बन्द कर देती है। यदि बन्द बर्तन में किसी चीज़ को जलाया जाए तो वह जल्दी ही बुझ जाती है क्योंकि फ्लॉजिस्टन निकलकर बर्तन की हवा में भर जाता है। जब हवा में और फ्लॉजिस्टन सोखने की क्षमता नहीं बचती है तो आग बुझ जाती है।

और श्वसन वगैरह के बारे में भी माना जाता था कि हम जो हवा साँस में लेते हैं उसमें फ्लॉजिस्टन मिल जाता है। लोहे पर जंग लगता तो कहते थे कि लोहे में से फ्लॉजिस्टन निकल गया। ऑक्सीजन की खोज के बाद ही इन सब क्रियाओं को ठीक तरह से समझा जा सका।

यह 1 अगस्त 1775 की बात है। जोसेफ प्रिस्टले ने पारे के ऑक्साइड को गर्म किया तो एक गैस बनी। प्रयोग करने पर पता चला कि यह गैस जलने में बहुत मददगार होती है। प्रिस्टले ने निष्कर्ष निकाला कि यह फ्लॉजिस्टन से मुक्त हवा है। यानी इसमें फ्लॉजिस्टन बहुत कम या नहीं के बराबर है। इसलिए यह किसी भी चीज़ से फ्लॉजिस्टन सोख लेती है और जलने में मददगार होती है। प्रिस्टले ने इसे "फ्लॉजिस्टन मुक्त हवा" का नाम दिया। उन्होंने इस बात को 1775 में ही प्रकाशित कर दिया था।

इसी समय या इससे भी पहले एक अन्य वैज्ञानिक कार्ल शीले ने भी प्रयोग किया। उन्होंने भी पारे के ऑक्साइड को गर्म किया और उन्हें भी ऐसी ही गैस मिली थी। उन्होंने इसे एक नई गैस माना मगर इसे कहीं प्रकाशित नहीं किया। शीले ने इसे नाम दिया था "फायर एयर" यानी अग्नि वायु। शीले की खोज का प्रकाशन 1777 में हुआ।

यह भी पता चला है कि पोलैण्ड के एक अन्य वैज्ञानिक माइकल सोदिज़वो ने शोरे यानी पोटेशियम नाइट्रेट को गर्म करके यही गैस इन दोनों से करीब 200 साल पहले बनाई थी। उन्होंने इसे नाम दिया था "एलिक्सिर ऑफ लाइफ" यानी प्राणवायु।

एक फ्रांसिसी वैज्ञानिक थे एन्तोन लेवॉज़िए। उनको प्रिस्टले की खोज का पता चला, तो तत्काल उन्होंने पारे के ऑक्साइड

को गर्म करके "फ्लॉजिस्टन मुक्त हवा" बना ली। बताते हैं कि लगभग इसी समय लेवॉज़िए को शीले का पत्र मिला जिसमें उन्होंने "फ्लॉजिस्टन मुक्त हवा" बनाने की अपनी विधि बताई थी। शीले को मालूम था कि इस काम में लेवॉज़िए की रुचि है।

लेवॉज़िए ने इन दोनों महान वैज्ञानिकों की खोज को लिया और पहली बार बताया कि यह एक नई गैस है जिसे उन्होंने ही "ऑक्सीजन" का नाम दिया। ऑक्सीजन एक युनानी शब्द है जिसका अर्थ होता है – अम्लजनक। ऑक्सीजन नाम उन्होंने इस आधार पर दिया था कि वे मानते थे कि सारे अम्लों में यह गैस होती है। उनका मानना गलत था।

लेवॉज़िए ने ही ऑक्सीजन के आधार पर जलने, श्वसन, जंग लगने वगैरह क्रियाओं की व्याख्या की – उन्होंने बताया कि इन सारी क्रियाओं में ऑक्सीजन खर्च होती है। जलते समय किसी चीज़ में से फ्लॉजिस्टन निकलता नहीं है बल्कि ऑक्सीजन उसमें जुड़ जाती है। इस तरह के प्रयोग करके उन्होंने फ्लॉजिस्टन सिद्धान्त को उखाड़ फेंका। कहते हैं कि फ्लॉजिस्टन को हटाकर ऑक्सीजन को स्थापित करना रसायन शास्त्र के विकास का पहला कदम था और यह लेवॉज़िए ने उठाया था। चकमक

शीले

लेवॉज़िए

माइकल सोदि्ज़वो

ऑक्सीजन की खोज का श्रेय किसे दिया जाए?

तो ऑक्सीजन की खोज का श्रेय किसे दिया जाए? शीले को? जिसने सबसे पहले ऑक्सीजन बनाई थी मगर इसे कहीं प्रकाशित नहीं करवाया। तो क्या अपनी खोज सबको बताना ही सबसे ज़रूरी बात है? क्या सिर्फ खोज लेने से काम नहीं चलेगा?

या इसका श्रेय प्रिस्टले को दिया जाए, जिन्होंने खोज तो बाद में की थी मगर प्रकाशित पहले कर दिया था? हालाँकि प्रिस्टले ने खोज तो की थी मगर वे यह नहीं समझ पाए थे कि उन्होंने एक नई गैस खोज ली है जिसका सम्बन्ध जलने, श्वसन वगैरह से है। वे तो इसे पुराने फ्लॉजिस्टन सिद्धान्त के आधार पर ही समझते रहे। तो क्या ऐसे व्यक्ति को ऑक्सीजन की खोज का श्रेय दिया जाए जो उसका महत्व समझ ही नहीं पाया था?

या क्या ऑक्सीजन की खोज का श्रेय लेवॉज़िए को दिया जाए जिसने उसे खोजा तो नहीं था मगर रासायनिक क्रियाओं को समझने में इसके महत्व को पहचाना और एक नई राह बनाई। और इसे ऑक्सीजन कहा। ऑक्सीजन के आधार पर रासायनिक क्रियाओं को समझाकर उन्होंने प्रमाण सिद्धान्त के लिए भी ज़मीन तैयार की।

मैं इस सवाल का जवाब देने नहीं जा रहा हूँ। तुम बताओ तुम्हें क्या लगता है?

पंजाबी दाल

जैसा कि मैंने कहा है, कुछ दालें खाने के लिए होती हैं, कुछ पीने के लिए। पंजाबी दाल को चबाना पड़ता है। यह इस कदर गाढ़ी होती है कि आप चाहें तो उसे छुरी से काट सकते हैं। गाढ़ी होने के साथ-साथ वह काली भी होती है, चाहे साबुत माश (काली उड़द) की दाल हो या चने की दाल। अगर आपको कभी अमृतसर से कलकत्ते तक ग्रांड ट्रंक रोड से सफर करने का मौका मिले तो रास्ते में आपको जगह-जगह पंजाबी ढाबे मिलेंगे, जहाँ यह काली दाल अधिकता से मिलती है और इस कदर स्वादिष्ट होती है कि इससे पूर्व कि आप अपना हाथ रोकें, आप तन्दूर की दो रोटियों के साथ चार कटोरी दाल खा चुके होते हैं। यद्यपि इस क्रिया के दो घण्टे के बाद पेट की वह हालत होती है कि जी चाहे तो गोबर-गैस प्लांट लगा लीजिए। हफ्तों काम देगा।

साभार - कृश्न चंदर की कहानी "लड़की दाल बघारती है" का एक हिस्सा।

रैक्स डी रोज़ारियो

चकदे! INDIA

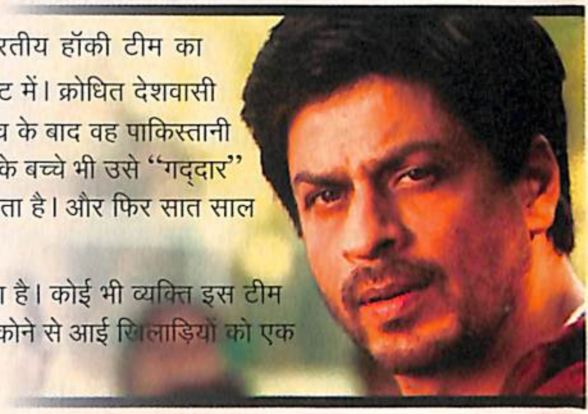

फिल्म कबीर खान की कहानी से शुरू होती है। सात साल पहले की बात है। कबीर खान भारतीय हॉकी टीम का कप्तान है। विश्व कप फाइनल में पाकिस्तान भारत को एक गोल से हरा देता है – पेनल्टी शूटआउट में। क्रोधित देशवासी कबीर को दोषी ठहराते हैं क्योंकि पेनल्टी शूटआउट में वह पेनल्टी मिस कर बैठता है। और तो और मैच के बाद वह पाकिस्तानी कप्तान से हाथ भी मिलाता है। "इस देशद्रोही ने देश को बेच डाला," लोग चिल्लाते हैं। उसके मोहल्ले के बच्चे भी उसे "गद्दार" की उपाधि से "सम्मानित" करते हैं। हार के बाद कबीर अपनी माँ के साथ मोहल्ला छोड़कर चला जाता है। और फिर सात साल तक गायब रहता है।

सात साल बाद कबीर लौटता है। विश्व कप के लिए महिला हॉकी टीम का प्रशिक्षण कैम्प लगने वाला है। कोई भी व्यक्ति इस टीम का कोच बनने को तैयार नहीं है। कबीर यह भूमिका स्वीकार करता है। तीन महीने में वह देश के कोने-कोने से आई खिलाड़ियों को एक ऐसी टीम में पिरोता है जो विश्व कप जीतकर लौटती है!

चकदे! इण्डिया हिन्दी सिनेमा की पहली फिल्म है जो हॉकी पर आधारित है। यूँ खेल थीम पर तो पहले भी फिल्में बनी हैं – _लगान_ और _इकबाल_ क्रिकेट पर तथा _हिप हिप हुर्रे_ फुटबॉल पर। इसके अलावा _जो जीता वही सिकन्दर_ का बड़ा हिस्सा एक साइकिल दौड़ पर आधारित है।

रील लाइफ...

यह फिल्मों में ही सम्भव है। सब जानते हैं कि एक माहिर हॉकी खिलाड़ी तैयार करने में सालों लग जाते हैं। पर कुछ भी कहो, निर्देशक ने जिस नाटकीय ढंग से कहानी को प्रस्तुत किया है, वह काबिले तारीफ है। शुरू से अन्त तक तनाव! कहानी इतनी तेज़ कि दर्शक सीट से चिपककर डायलॉग का एक-एक शब्द पकड़ने की कोशिश में रहते हैं।

एक अच्छी फिल्म में कुछ मूल चीज़ें होती ही हैं – तनाव, गति और रोचकता। तुम पूछ सकते हो, "एक महिला हॉकी टीम की कहानी में क्या खूबी हो सकती है?" वही खूबी जो सभी अच्छी कहानियों में होती है। जो हमारे दिल को छू जाती है। एक कमज़ोर, लाचार व्यक्ति या टीम का दुनिया से लड़कर जीत हासिल करना।

टीम में गुटबाज़ी चलती रहती है। कबीर का काम है खिलाड़ियों में एक टीम की भावना जगाना, देश के बारे में सोचने पर मजबूर करना। आखिरकार तैयार होती है एक ऐसी टीम जो फाइनल में ऑस्ट्रेलिया को हरा देती है।

इस जीत से कबीर की इज़्ज़त और सम्मान लौट आते हैं। जीत उसके देशप्रेम का प्रमाण है। आखिरी सीन भी एकदम फिल्मी है। कबीर अपनी माँ के साथ घर लौटता है, जहाँ एक लड़का दीवार पर लिखा "गद्दार" शब्द मिटा रहा है। कबीर उसको अपनी हॉकी देता है। आखिर जीत हॉकी की भी तो है। क्रिकेट के इस देश में हॉकी का दर्जा काफी नीचा है। उम्मीद है यह फिल्म लोगों में हॉकी के प्रति रुचि बढ़ाएगी।

इशारों इशारों में

चकदे! इण्डिया में कई इशारे एकदम फिल्मी स्टाइल में किए गए हैं। जैसे, औरतों के प्रति भेदभाव। हॉकी फेडरेशन का मुखिया कहता है, "चकला बेलन चलाने वाली भारतीय नारी क्या हॉकी खेलेगी?" एक खिलाड़ी नई-नई दुल्हन बनी है। उसके ससुराल वाले मानते हैं कि उसकी सही जगह पति का घर है। फिल्म में देशभक्ति भी है। पर यह कैसा देश है जहाँ उत्तर में रहने वाली एक खिलाड़ी दक्षिण भारतीय खिलाड़ी से पूछती है, "तमिल और तेलगू में क्या कोई फर्क है?" आंध्र की एक खिलाड़ी उसे जवाब देती है, "उतना ही जितना पंजाबी और बिहारी में है।"

क्या एक्टिंग है!

फिल्म के सभी पात्रों ने अपनी-अपनी भूमिका बढ़िया ढंग से निभाई है। शाहरुख और एक-दो अन्य को छोड़कर बाकी कोई भी पेशेवर कलाकार नहीं है। हालाँकि कुछ पात्र पुराने घिसे-पिटे बम्बईया स्टाइल में हैं, पर उनका भी अभिनय अच्छा है।

फिल्म का संगीत बढ़िया है, ज़ुबान पर चढ़ने वाला। *चकदे! इण्डिया* शाहरुख की बेहतरीन फिल्मों में से एक साबित होगी। पुरस्कार जीतने लायक!

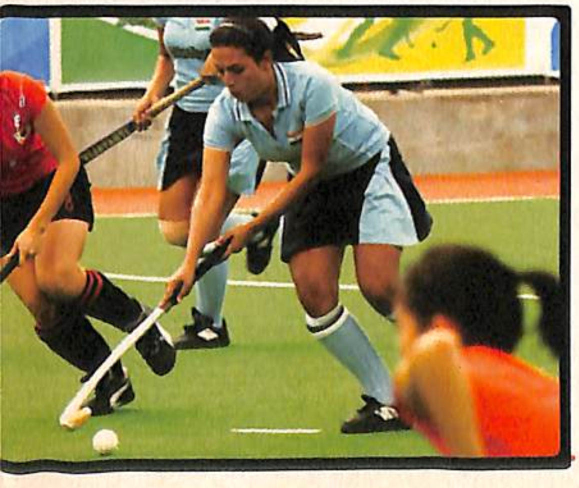

रियल लाइफ...

चकदे! इण्डिया भारत की पुरुष हॉकी टीम के पूर्व कप्तान और गोलकीपर मीर रंजन नेगी की कहानी से प्रेरित है। 1982 एशियाड खेल के फाइनल में पाकिस्तान ने भारत को 7-1 से हराया। दोष नेगी पर मढ़ा गया। इस बदनामी की वजह से वे 16 साल तक हॉकी से गायब रहे। 1998 में वे भारतीय पुरुष हॉकी टीम के कोच बने। और अपनी टीम को एशियाई खेलों में स्वर्ण पदक जितवाया। नेगी ने महिला हॉकी टीम को भी प्रशिक्षण दिया और टीम ने 2002 की कॉमनवेल्थ प्रतियोगिता जीती। नेगी कहते हैं, "मैं हमेशा से हॉकी का खिलाड़ी रहा हूँ और रहूँगा। इसी ने मुझे फिर से जीने की हिम्मत दी है।" उनकी आत्मकथा *ग्लूम टू ग्लोरी* जल्द ही प्रकाशित होने वाली है।

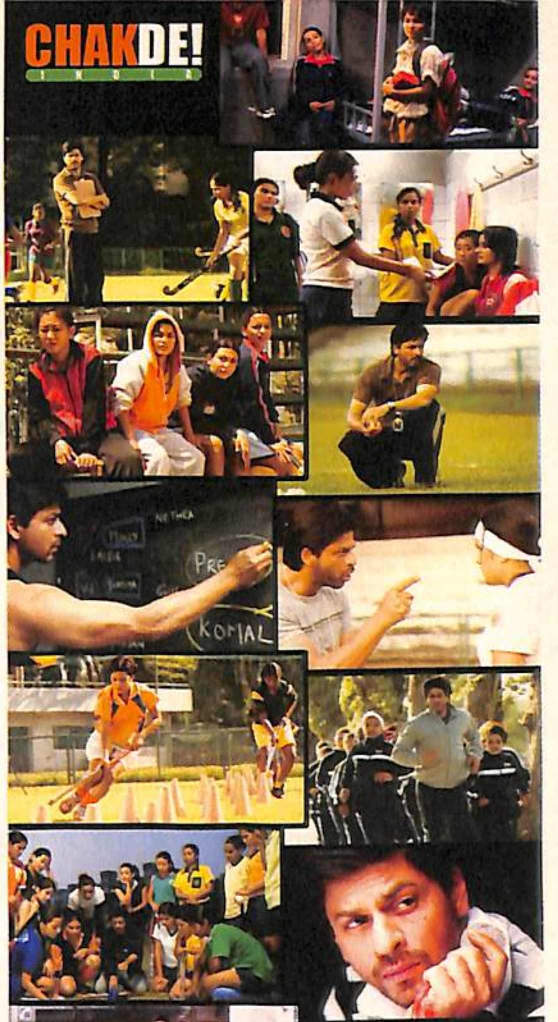

कोच के कोच

मीर रंजन नेगी *चकदे! इण्डिया* के सलाहकार रहे हैं। उन्होंने एक साल तक शाहरुख खान और टीम के 16 कलाकारों को प्रशिक्षण दिया ताकि दृश्य असली लगें। इनमें से चार किसी न किसी स्तर पर हॉकी खेल चुके थे। शाहरुख दिल्ली विश्वविद्यालय की हॉकी टीम के सदस्य रह चुके हैं।
"चकदे" एक पंजाबी शब्द है जिसका मतलब है – रौंद दे!

विनोद कुमार शुक्ल

हरे पत्ते के रंग की • पतरंगी
और कहीं खो गया नाम का लड़का

बचपन में चिड़ियों पर नज़र बहुत पड़ती है। बड़े होने लगते हैं तो उन पर नज़र कम पड़ती है।

मैं पतरंगी चिड़िया के बारे में बोलूँगा। जो हरे पेड़ पर दिखलाई नहीं देती।

हम लोग बैठे-बैठे भी बात करते हैं, चलते-चलते भी। अकेले बड़बड़ाते हैं। लेटे-लेटे बात करते हैं। नींद में भी बोलते हैं। परन्तु पतरंगी चिड़िया, उड़ती है तभी बोलती है। बैठ गई तो चुप हो जाती है।

उसे बोलना है तो उड़ेगी। नहीं बोलना है तो बैठ जाएगी।

पतरंगी, गौरैया जितनी बड़ी होती है। पूँछ लम्बी और नुकीली होती है। यह खुली जगहों में, खेतों, बाड़ के खम्भों, टेलीफोन के तारों में बैठे अक्सर दिखाई देती है। साँझ होते ही सोने के पहले बसेरे के पेड़ के ऊपर बहुत हल्ला मचाती है। एक झुण्ड हल्ला मचाते हुए उड़ता है और पेड़ पर बैठते ही चुप हो जाता है, तो दूसरा झुण्ड हल्ला मचाते हुए उड़ने लगता है।

इस चिड़िया का उड़ते हुए बोलना अनोखा लगता है। यह उड़ते-उड़ते दुगुनी थक जाती होगी, उड़ते हुए और बोलने से। इसलिए दुगुनी सुस्ताती होगी, बैठकर और चुप रहकर।

इस तरह एक कहानी लिखने की सोचता हूँ कि एक लड़का है। छह साल का। दूसरी कक्षा में पढ़ता है। मटमैले रंग की एक नई कमीज़ पहने है जो दो बार धुलने के बाद बहुत पुरानी लगती है। कत्थे रंग की पेंट है। वह दृश्य में इस तरह घुलमिल जाता है कि मुरमी ज़मीन के मैदान पर थोड़ी दूर ही जाता है तो ओझल होने के बहुत पहले से ओझल होने लगता है। जब वह अचानक पास आकर दिखाई देता है तो लगता है कि कैमरे के ज़ूम लेंस से लाया गया है। बाल घुँघराले, काले और बड़े हैं। कंघी से पीछे कोरे गए। उसकी इच्छा होती है, उड़ जाए। यदि चुप बैठा रहता है तो लगता है कहीं खो गया। उसकी माँ तब उसे बुलाती कि कहीं खो गया है? "कहीं खो गया है" उसके पुकारने का नाम जैसा था। यह पुकारने का नाम घर का था, बाहर भी। स्कूल में भी था। परन्तु स्कूल का लिखाया हुआ नाम बोलू था। यह नाम उसकी सफलता के साथ चहकने के कारण रखा गया था।

बहुत दिनों के बाद एक दिन उसकी माँ को पता चला कि वह केवल चलते हुए बोलता है। चुप रहता है तब खड़ा रहता है या बैठा रहता है। अच्छे से बोलना उसने तब सीखा जब वह चलना, दौड़ना सीख गया। कूल्हे के बल जब खिसकता था तब च, च, या ब, ब या द, द बोलना शुरू किया था। घुटने के बल चलते समय चच, बब, दद बोलता था। अच्छा था कि उसकी नींद में बड़बड़ाने की आदत नहीं थी।

चलते-चलते बोलने की आदत के कारण सुनने वालों को उसके साथ-साथ चलना पड़ता। उसकी माँ उसके साथ नहीं चल पाती थी। पीछे-पीछे चल पाती थी। कई दिनों के बाद उसकी माँ को यह भी पता चला कि वह जल्दी थक क्यों जाती है। इसके बाद भी बोलू का काम ठीक चल रहा था। घर-संसार का काम भी ठीक चल रहा था। जैसे उसे स्कूल जाना है, तो किताब से बोलने के लिए कोई पाठ जो उसे याद करना है निकाल लेता और बस्ता लटकाकर ज़ोर से पढ़ते, दुहराते स्कूल के रास्ते चल पड़ता। कक्षा में अपनी जगह पर आकर बैठकर चुप हो जाता या बैठने के लिए चुप हो जाता। स्कूल से लौटते समय भी ऐसा ही करता। रास्ते में उससे कोई कुछ पूछता तो खड़े होकर सुन लेता और उत्तर देते हुए

चल पड़ता। बोलते हुए आने के कारण जब वह स्कूल से लौटता तो उसका पास आना माँ सुन लेती। दरवाज़े का साँकल अन्दर से खोल देती, बोलू दरवाज़े को ठेलकर अन्दर आ जाता। रोज़ रास्ते भर पढ़ते हुए स्कूल जाने और पढ़ते हुए घर आने से बोलू पढ़ने में होशियार था। एक दिन जब वह स्कूल से लौटा तो माँ ने उसे दूध-रोटी खिलाई। माँ जब थकी होती तो बोलू से कुछ पूछती नहीं थी। परन्तु उस दिन पूछ लिया। दूध-रोटी उसने खतम किया ही था।

"आज स्कूल में क्या हुआ," प्यार से माँ ने पूछा।

बोलू चुप बैठा हुआ था। चलने और बोलने से थोड़ा-दुगुना थका हुआ। माँ का अपने बेटे से बात करने का मन तो होता है। बोलू का भी मन होता है कि अपनी माँ से बात करे।

"बोलू बोलता क्यों नहीं।"

"माँ आज स्कूल में बहुत अच्छा लगा।" खड़े होकर चलते हुए बोलू ने कहना शुरू किया....

एक कमरे का घर। घर का दरवाज़ा खुला था। "हुआ यह," कहते हुए बोलू चार कदम में ही घर से बाहर हो गया।

बोलू को जैसे मालूम था कि माँ पीछे आ रही होगी। बोलू चलते-चलते बोल रहा था। पीछे उसकी माँ बात सुनते हुए चलती आ रही थी।

"माँ, एक बिल्ली का बच्चा कक्षा में घुस आया। भूरी बि[illegible] थी। कोई लड़का बस्ते में लाया होगा। कॉपी-किताब निकालने के पहले बिल्ली का बच्चा खुद बाहर निकल आया होगा। मेरी किताब में चूहे-बिल्ली का पाठ है। दूसरी कक्षा की सबकी किताब में चूहे-बिल्ली का पाठ है। कहीं मेरी किताब के पाठ से तो बिल्ली का बच्चा बाहर न निकल गया हो। अब पाठ में वापस कैसे जाएगा? सबकी किताब से एक-एक कर बिल्ली के बच्चे बाहर आ जाएँ तो कक्षा में बहुत-से बिल्ली के बच्चे हो जाएँगे। एक जैसे पाठ की एक जैसी बिल्ली। मैं अपनी

चित्रः अतनु राय

बिल्ली कैसे पहचानूँगा? मेरी किताब की मेरी बिल्ली मुझे पहचानती होगी। मेरी किताब को भी पहचानती होगी। पहले बस्ते के अन्दर बिल्ली जाएगी। बस्ते के अन्दर से किताब के अन्दर। किताब के अन्दर से पाठ के अन्दर।" बोलू जल्दी-जल्दी बोल रहा था। इसलिए जल्दी-जल्दी चल रहा था। बोलू के कहे एक-एक शब्द से बोलू की माँ थोड़ा-थोड़ा पिछड़ती जा रही थी। फिर एक-एक शब्द से एक-एक कदम पीछे होने लगी। तब माँ ने बोलू से ज़ोर से कहा, "बोलू बेटा चुप हो जा।" बोलू चुप होकर रुक गया। माँ यदि कहती, "रुक जा," तो बोलू रुकते ही चुप हो जाता।

"बेटा घर की तरफ लौटो। घूम जाओ। देर हो गई। दूर निकल आए।"

"हाँ माँ," कहकर वह घर की तरफ घूम गया।

"अब बता, बिल्ली का क्या हुआ?"

"बिल्ली कक्षा में इधर-उधर भाग रही थी। सब लड़के बिल्ली को पकड़ने की कोशिश कर रहे थे।"

"गुल-गपाड़ा हो गया।"

"गुड़-गोबर हो गया?" माँ ने पूछा।

"नहीं। मास्टर जी हँस रहे थे। बिल्ली से डरकर कोने में खड़ा एक लड़का रोने लगा था। तो उसके पास में खड़ा दूसरा लड़का भी रोने लगा। जब मास्टर जी हँसने लगे तो सब हँसने लगे। रोने वाले लड़के भी। मैं बार-बार बोलता जा रहा था और बिल्ली को पकड़ने कूदता-भागता था कि बिल्ली मैं तुझको पकड़ लूँगा। भागकर कहाँ जाएगी। पर मैं बिल्ली को पकड़ नहीं सका। कोई नहीं पकड़ पाया और बिल्ली कक्षा से बाहर भाग गई।" बोलू माँ के पास आ गया था। आगे कुछ बोलने-बोलने को था और आगे जाने को उसने कदम उठाया ही था कि वहीं खड़ी बोलू के पास आने का रास्ता देखती उसकी माँ ने बोलू का हाथ पकड़ा, "बोलू थोड़ा रुक जा।" बोलू रुक गया। "धीरे-धीरे कुछ बोल बोलू। तेरी माँ थक गई। धीरे-धीरे घर चल। मैं तेरा हाथ अपने सहारे के लिए पकड़े हूँ।"

बोलू ने तब माँ के सुख के लिए अपने मन से एक कविता सुनाईः

पतरंगी पतरंगी
तू उड़ते-उड़ते बात करेगी
मैं चलते-चलते बोलूँगा
माँ तुम बताओ पतरंगी संग
मैं उड़ते-उड़ते कब बोलूँगा।

माँ को सुनने बोलू चुप होकर खड़ा हो गया। तब माँ ने बोलू को चिपटा लिया और सिर पर हाथ फेरते हुए उँगलियों से उसके बड़े-बड़े बालों को पीछे की तरफ सुलझाते हुए गाकर कहाः

अभी तू नन्हा छोटा है
अभी से क्यों उड़ जाएगा
पढ़-लिख लेने से ही
पंख तेरे फूटेंगे
तब तू उड़ना।

माँ के बोलने के साथ बोलू माँ का कहा दुहराता जा रहा था कि माँ का कहा याद हो जाए और धीरे-धीरे थोड़ा रुकते-रुकते दोनों साथ-साथ घर के अन्दर आ गए।

माथा पच्ची

जयश्री सुब्रमण्यन

चार संख्याएँ और एक चौकोर

संख्याएँ भी क्या कमाल करती हैं! इसका नमूना एक किताब में दिखा। इतना मज़ेदार लगा कि झट करने बैठ गई।

एक चौकोर बनाया। उसके चारों कोनों पर एक-एक संख्या लिख ली। संख्याएँ कोई भी हो सकती हैं। जैसे मैंने लिखीं:

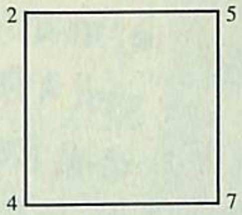

चारों भुजाओं के ठीक बीच में निशान लगा लिया। कोने वाली दो संख्याओं का अन्तर बीच वाले बिन्दु पर लिख लिया। इन बिन्दुओं को जोड़ते हुए एक और वर्ग बना लिया। अब दो वर्ग हो गए।

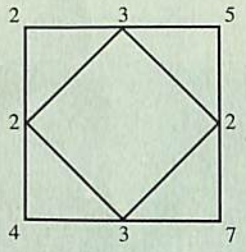

एक और वर्ग बनाना है, पहले की ही तरह। चित्र में तुम देख रहे हो तीसरे वर्ग के चारों कोनों पर 1 लिखा है।

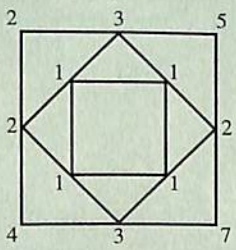

इस क्रिया को तब तक दोहराना है जब तक ऐसे वर्ग तक न पहुँच जाओ जिसके चारों कोनों पर एक ही संख्या हो। मैंने जब इसे किया तो केवल तीन ही वर्ग बने।

मैंने आस-पड़ोस के कुछ बच्चों को बुलाया। उन्हें यह खेल बताया। उनका भी वही हाल हुआ जो मेरा था। झट कागज़, पेन लेकर सब अपने-अपने वर्ग बनाने लगे।

लक्ष्मण ने एक ही संख्या चारों कोनों पर लिखी। नतीजा – एक वर्ग।

अमीना ने सोचा मुझे सबसे ज़्यादा वर्ग बनाने हैं। सो बड़ी-बड़ी संख्याएँ सोचीं – 25, 50, 75, 100 – और वर्ग बनाया यूँ:

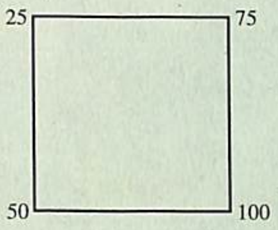

और कितने वर्ग बने? – केवल तीन। ऐसा कैसे हो सकता है? उसने उन्हीं संख्याओं के साथ फिर खेल किया। संख्याओं की जगह बदलकर:

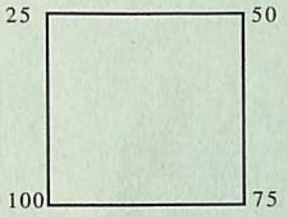

अरे यह क्या? वर्ग बढ़ गए। तुम्हीं बताओ इस बार कितने वर्ग बने?

अब तक चुपचाप बैठी नन्ही अमीना को भी इसमें मज़ा आने लगा। उसने जोड़-घटा अभी-अभी सीखा था। उसने संख्याएँ चुनीं – 1, 2, 3, 8 – और उसे मिले 7 वर्ग। अगर इन संख्याओं की जगह बदलें तो बताओ क्या होगा?

इसी तरह संख्याएँ सोचते रहो, उनकी जगह बदलते रहो और देखो कितने वर्ग मिले। इस दौरान कोई मज़ेदार बात नज़र आए तो मुझे ज़रूर लिखना। तब तक के लिए लगे रहो...।

कौन-सा अंक?

1

2

3

4

इनमें से कोई एक अंक चुनो।

कौन-सा अंक चुना? 3!

एक जनाब कहते हैं कि 100 में से 95 लोग 3 को ही चुनते हैं। तुम खुद जाँचकर देख लो।

एक खेल

ज़रूरत होगी: चार नरम और थोड़ी बड़ी रस्सियों की।

कैसे खेलना है: चार-चार बच्चों की जितनी चाहो उतनी टीमें बना लो।

पीठ से पीठ मिलाकर चार बच्चे खड़े हो जाएँ। उन्हें रस्सी से बाँध दो। जब सभी टीमें बन जाएँ तो दौड़ शुरू करो। जो तय जगह पर पहले पहुँचे वही टीम जीती।

चित्रः अतनु राय

अन्तर ढूँढो!

यह तान्या के बर्थ डे का फोटो है। वैसे तो तेईस लोग आए थे, पर इस फोटो में सिर्फ नौ ही दिख रहे हैं।

ये नान्या के बर्थ डे की फोटो है। ऐसे तो तेइस लोग घर आए थे पर यहाँ फोटो में बस नौ दोस्त ही दिख रहे हैं।

दुनिया के 7 आश्चर्य

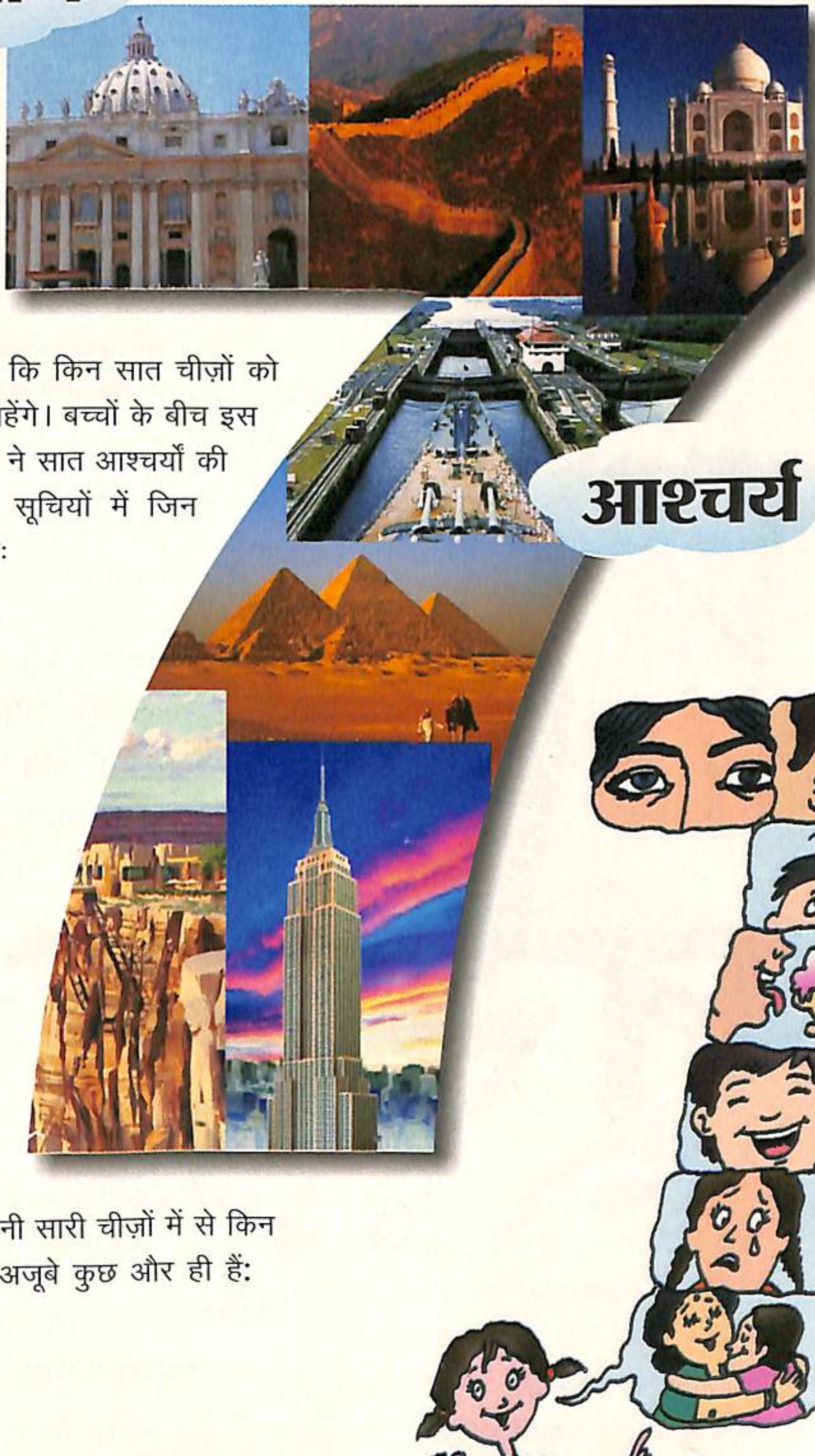

एक कक्षा में टीचर ने बच्चों से पूछा कि किन सात चीज़ों को वे दुनिया के अजूबों में शामिल करना चाहेंगे। बच्चों के बीच इस पर कुछ देर तक तर्क-वितर्क हुए। सभी ने सात आश्चर्यों की अपनी-अपनी सूचियाँ तैयार कीं। इन सूचियों में जिन चीज़ों को सबसे ज़्यादा वोट मिले वे हैं:

1. मिस्त्र का महान पिरामिड
2. ताजमहल
3. ग्रांड कैन्यन
4. पनामा नहर
5. एम्पायर स्टेट बिल्डिंग
6. सेंट पीटर्स बैसिलिका
7. चीन की विशाल दीवार

टीचर ने देखा कि एक लड़की चुप बैठी है। उसने इस प्रक्रिया में भी हिस्सा नहीं लिया। वो गुमसुम-सी बैठी कुछ सोच रही थी। टीचर ने पूछा, "क्या तुम्हें यह सूची ठीक नहीं लगी। कुछ समस्या है इसमें?" लड़की बोली, "हाँ। असल में मैं सोच नहीं पा रही हूँ कि इतनी सारी चीज़ों में से किन सात को चुनूँ। मेरे हिसाब से तो सात अजूबे कुछ और ही हैं:

देख पाना
सुन पाना
छू पाना
स्वाद ले पाना
महसूस कर पाना
हँस पाना
प्रेम करना।"

कक्षा में चुप्पी छा गई। क्या तुम इससे सहमत हो? तुम्हारे हिसाब से दुनिया के सात आश्चर्य कौन-से हैं?

चित्रः अतनु राय

प्रस्तुतिः सी. एन. सुब्रमण्यम

मूसल से मुक्ति

एक सामान्य गृहणी का जीवन कितना कठिन होता है। कमर तोड़ मेहनत तो करनी ही पड़ती है, अपमान भी सहना पड़ता है। हम सोच सकते हैं कि दो-ढाई हज़ार साल पहले कैसी स्थिति रही होगी। उस ज़िन्दगी से जब छुटकारा मिला तो उन्हें कैसा लगा होगा?

सुमुत्तिका सुमुत्तिका साधुमुत्तिकाम्हि मुसलस्स
अहिरिको मे छत्तकं वा पि, उक्खलिका में दड्डुभं वा ति ॥

मुक्त नारी हूँ, मैं मुक्त नारी हूँ, धन्य है मूसल से यह मुक्ति!

उस बेशरम पति से जो मुझे उसके बनाए छाते से भी तुच्छ समझता था और उन खाली भाण्डों से जिनके बीच मैं गरीबी में बैठी रहती थी।

रागञ्च अहं दोसञ्च, चिच्चिटि ति विहनामि।
सा रुक्खमूलमुपागम्म, अहो सुखं ति सुखतो झायामी ति ॥

मोह और द्वेष दोनों को त्यागकर मैं शान्त और स्वच्छ हो गई हूँ।

वृक्ष के नीचे बैठकर आह कितने सुख से अपने सुख का मनन करती हूँ।

अपनी गरीबी से परेशान और अपने पति से दुखी यह महिला कौन थी?

शायद हमारी या तुम्हारी माओं में से कोई...

टीकाकारों का कहना है कि वह आज से 2500 साल पहले बुद्ध के समय श्रावस्ती नगर के पास के एक गाँव में रहती थी। उसका पति रोज़ी-रोटी के लिए छाते बनाकर बेचता था। हमें उस महिला का नाम नहीं पता। जैसा कि अपने देश में होता है, उसे सुमंगल की माँ कहके पुकारा जाता था। सुमंगल उसका बेटा था।

सुमंगल दूसरों के खेतों में मज़दूरी करता था। संयोग की बात है कि अपनी माँ की तरह वह भी बौद्ध संघ में शामिल हो गया। माँ थेरी कहलाई तो बेटा थेर कहलाया।

सुमंगल थेर ने भी दो पंक्तियों में अपनी व्यथा दर्ज की है। माँ और बेटे के विचार व भाषा में काफी समानता हैः

मैं मुक्त हूँ, मैं मुक्त हूँ, जुताई बुवाई से मुक्त हूँ,
हँसियों से, हलों से और छोटे कुदालों से मुक्त हूँ।

आज से लगभग 2500 साल पहले रची गई थेरीगाथा व थेरगाथाओं में हमें अक्सर गरीब व वंचित लोगों की आवाज़ें सुनने को मिलती हैं। ये गाथाएँ बौद्ध सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं जिनमें भिक्षु व भिक्षुणियाँ अपने पुराने व नए जीवन के बारे में बताते हैं। बुद्ध का समय वो समय था जब शहर तेज़ी से बढ़ रहे थे। समाज में ऊँच-नीच, अमीर-गरीब में फर्क बढ़ रहा था। महिलाओं पर नई-नई पाबन्दियाँ लगाई जा रही थीं। मगध जैसे शक्तिशाली राज्यों का निर्माण हो रहा था।

थेरीगाथा, उस समय की बोलचाल की भाषा, पाली में है। पाली संस्कृत भाषा से उपजी एक भाषा है। इसी भाषा में बौद्ध धर्म का प्राचीन साहित्य लिखा गया है। शायद शुरू में थेर और थेरी इन्हें अपनी आपबीती के रूप में एक-दूसरे से कहते रहे होंगे। बाद में इन्हें इन कविताओं के रूप में ढालकर संकलित किया गया होगा।

एक आकर्षक पुरस्कार...

"धन्य है मूसल से यह मुक्ति!" का क्या मतलब हो सकता है? सोचो। पाली भाषा में इनके समानार्थी शब्द क्या हैं?:

1. छाता......... 2. पेड़ के नीचे..........
3. द्वेष.......... 4. मुक्त नारी..........

अपना जवाब एक पोस्टकार्ड में लिखकर *चकमक* के पते पर भेजना। सबसे सही और अच्छे पाँच जवाब लिखने वालों के घर पर पहुँचेगा एक आकर्षक पुरस्कार।

केदारनाथ सिंह

बिना नाम की नदी

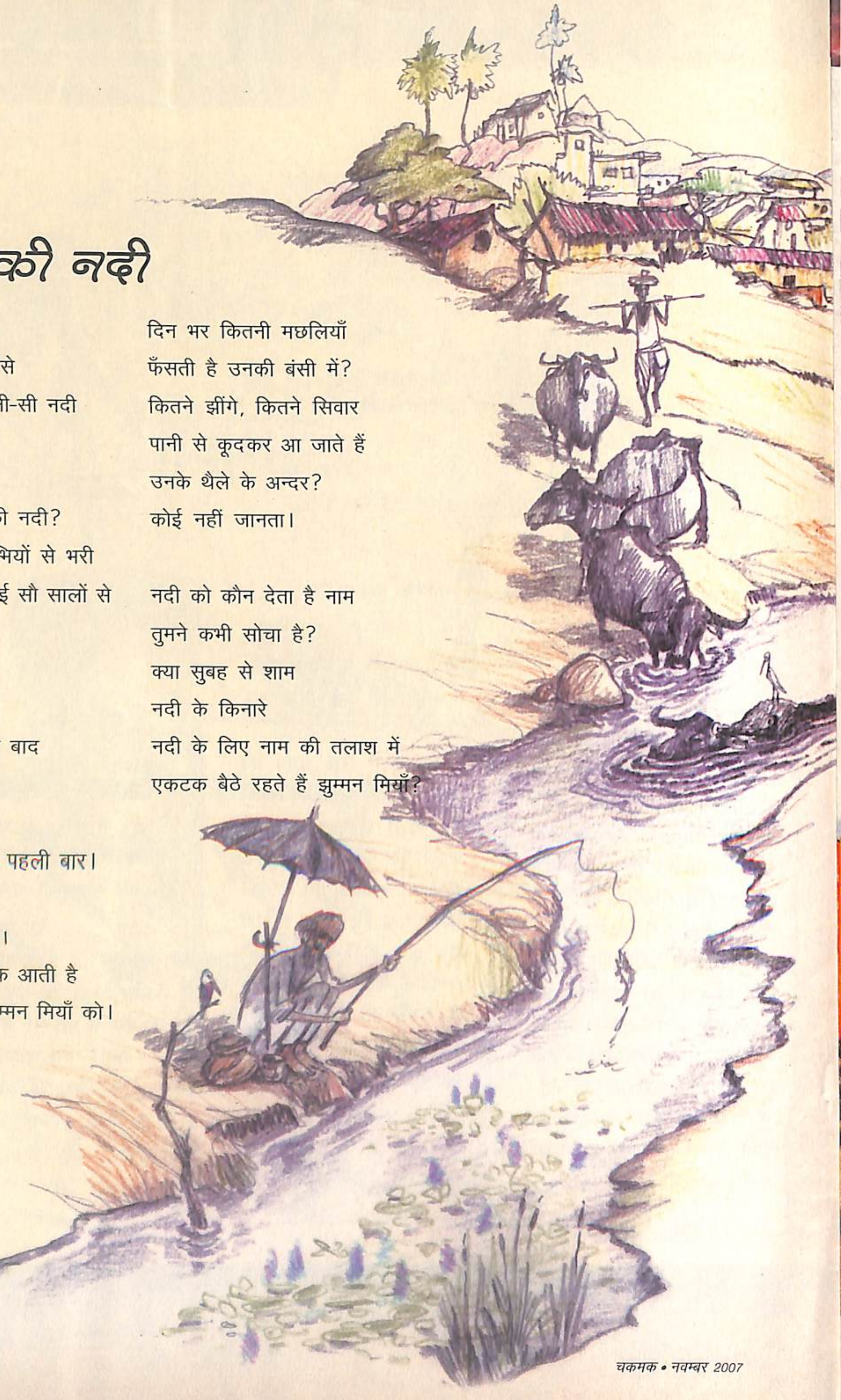

मेरे गाँव को चीरती हुई
पहले आदमी से बहुत पहले से
चुपचाप बह रही है वह पतली-सी नदी
जिसका कोई नाम नहीं।
तुमने कभी देखा है
कैसी लगती है बिना नाम की नदी?
कीचड़, सिवार और जलकुम्भियों से भरी
वह इसी तरह बह रही है कई सौ सालों से
एक नाम की तलाश में
सारे गाँव की नदी।

सूरज निकलने के काफी देर बाद
आती हैं भैंसें
नदी में नहाने के लिए।
नदी कहीं गहरे में हिलती है पहली बार।
फिर आते हैं झुम्मन मियाँ
हाथ में लिए बंसी और चारा।
नदी में पहली बार एक चमक आती है
जैसे नदी पहचान रही हो झुम्मन मियाँ को।

दिन भर कितनी मछलियाँ
फँसती है उनकी बंसी में?
कितने झींगे, कितने सिवार
पानी से कूदकर आ जाते हैं
उनके थैले के अन्दर?
कोई नहीं जानता।

नदी को कौन देता है नाम
तुमने कभी सोचा है?
क्या सुबह से शाम
नदी के किनारे
नदी के लिए नाम की तलाश में
एकटक बैठे रहते हैं झुम्मन मियाँ?

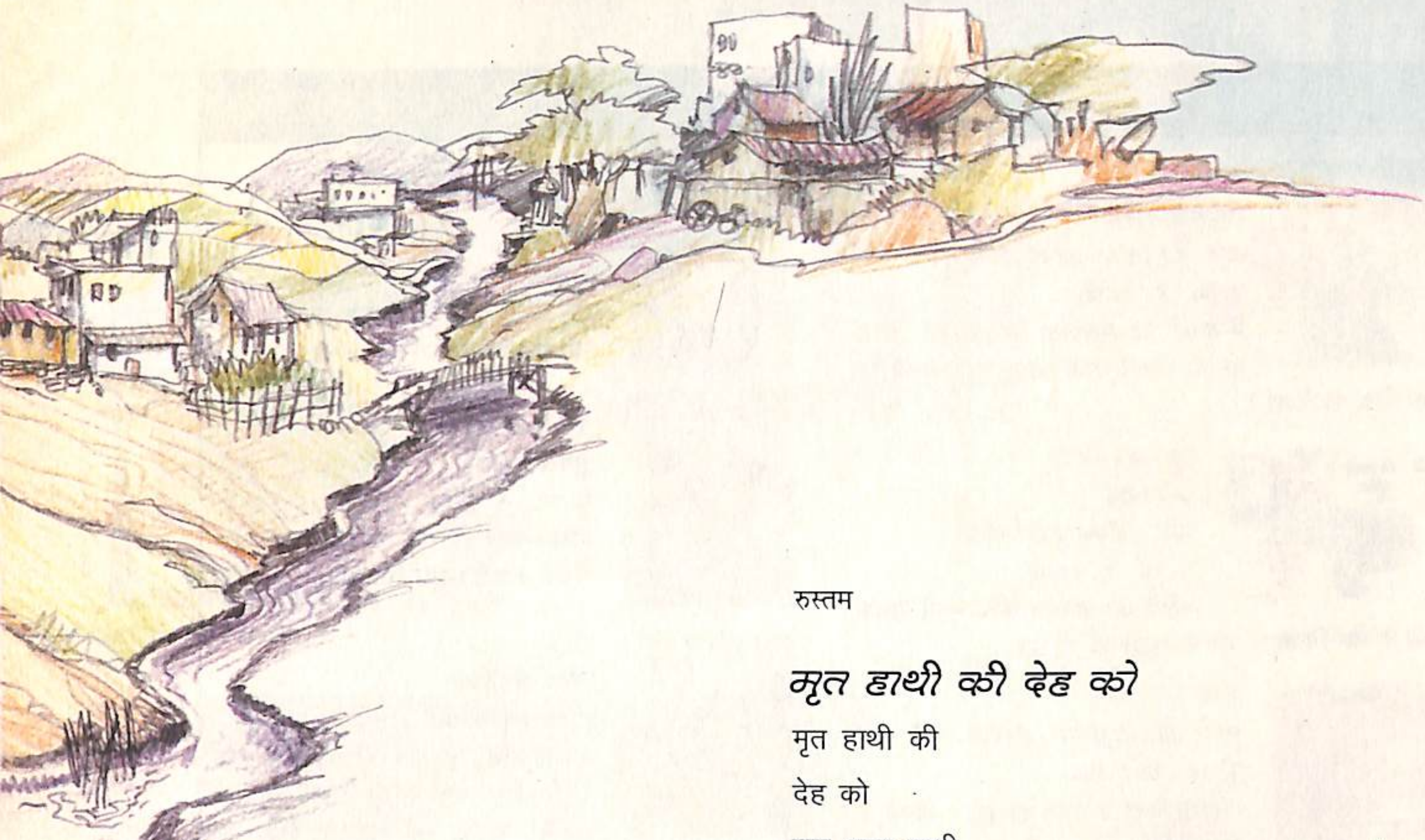

रुस्तम

मृत हाथी की देह को

मृत हाथी की
देह को
एक अन्य हाथी
सूँघ रहा था।

अनन्त समय तक
उसने अपनी सूँड को
उस देह के
एक-एक इंच पर घुमाया।

फिर चला गया।

कई वर्ष पहले
यह दृश्य
मैंने टीवी पर
देखा था।

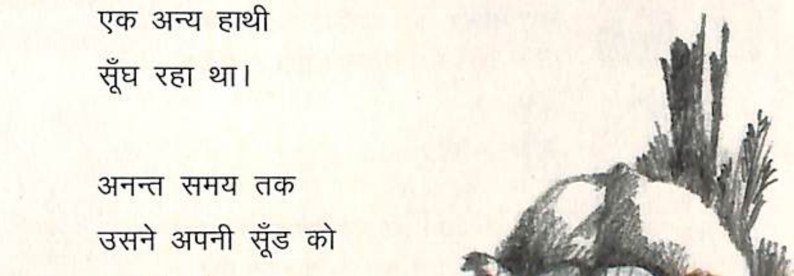

जो स्वप्न मुझे नहीं आते थे

जो स्वप्न
मुझे नहीं आते थे,
वे कहाँ जाते थे?

ज़रूर कोई और
उन्हें देखता था
अपनी नींद में।

रोज़ वह चुरा लेता था
मेरे कुछ स्वप्न!

चित्रः अतनु राय

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया से प्रकाशित कुछ नवीनतम बाल पुस्तकें

चबर-चबर
गिजुभाई बधेका
अनु. और चित्र : आबिद सुरती
पृ. 40 रु. 35.00
गिजुभाई का गुलदस्ता श्रृंखला की दूसरी पुस्तक, जिसमें बच्चों को गुदगुदाने वाली 10 पारंपरिक कहानियां हैं।

जब आये पहिए
अनूप राय
अनु. : दीपक कुमार गुप्ता
पृ. 16 रु. 14.00
पहिये के आगमन की कहानी रोचक ढंग से और चित्रात्मक रूप में प्रस्तुत की गई है।

पहेली
लेखन और चित्रांकन : जगदीश जोशी
पृ. 24 रु. 17.00
नन्ही चिड़िया ने सूरज का रहस्य जानने के लिए मेहनत की। आखिर उसकी मेहनत सफल रही। सुंदर कहानी। सुंदर चित्रांकन।

तपस्या
सीतेश आलोक
पृ. 16 रु. 14.00
किसी भी काम को मन लगाकर करना ही तपस्या है इसी बात के आसपास बुनी गई एक सुंदर रचना।

चूहा सात पूंछों वाला
गिजुभाई बधेका
अनु. और चित्र : आबिद सुरती
पृ. 36 रु. 35.00
गिजुभाई का गुलदस्ता श्रृंखला की तीसरी पुस्तक, जिसमें बच्चों को गुदगुदाने वाली 10 पारंपरिक कहानियां हैं।

एक रात जंगल में
क्षमा शर्मा
पृ. 16 रु. 14.00
एक लड़के और मां हथिनी के बीच बने स्नेह के रिश्ते की मार्मिक कहानी।

बर्फ के आदमी
सूर्यनाथ सिंह
पृ. 32 रु. 25.00
विज्ञान-कथा की तर्ज पर लिखी गयी एक रोचक कहानी। सुंदर चित्रांकन।

सहेली
सुरेखा पाणंदीकर
पृ. 45 रु. 35.00
राजस्थान की पृष्ठभूमि पर आधारित एक लड़की और उसकी सहेली ऊटनी की सुंदर कहानी। लड़की की बहादुरी देखते ही बनती है।

बच्चों की सुभद्रा
संपा. : चन्द्रा सदायत
पृ. 32 रु. 25.00
श्रेष्ठ कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान की लिखी बालोपयोगी कविताओं का अनूठा संकलन।

नन्हा पौधा
लेखन एवं चित्रांकन : ज़मर जलील
पृ. 16 रु. 14.00
सूख रहे एक नन्हे पौधे को कुछ बच्चों ने जब पानी का सिंचन दिया तो उस पौधे में जान आ गई। इसी भावभूमि पर एक गीतात्मक और चित्रात्मक पुस्तक।

अधिक जानकारी के लिए कृपया संपर्क करें :

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110016 • दूरभाष : 26564020, 26564540, 26568052
ई-मेल : nbtindia@ndb.vsnl.net.in वेबसाइट : http://www.nbtindia.org.in
मुंबई : दूरभाष व फैक्स : 91-22-23720442 • ई-मेल : nbtindiamumbai@yahoo.com
बंगलोर : दूरभाष व फैक्स : 91-80-26711994 • ई-मेल : nbtindiasro@vsnl.net
कोलकाता : दूरभाष व फैक्स : 91-33-22413899 • ई-मेल : nbtero@dataone.in

नेशनल बुक ट्रस्ट किताब क्लब के सदस्य बनें और नेशनल बुक ट्रस्ट के प्रकाशनों पर 20 प्रतिशत की छूट पाएं

मेरा पन्ना

अपाला मिश्रा, देहरादून

श्रेया दिवटे, पाँचवीं, उज्जैन. म.प्र.

मौलिका शर्मा, मुम्बई

रोहन कुमार सिसोदिया

निशि खण्डेलवाल, पाँचवीं, उज्जैन, म.प्र.

क्या तुम पत्थरों में जान फूँकना चाहोगे?

अगर हाँ, तो सबसे पहले कुछ गोल-गोल पत्थर, कंकड़ ढूँढ लाओ। उन्हें अच्छी तरह धो-पौंछकर सुखा लो। अब रंगों का डिब्बा खोलो। पत्थरों को रंगो और आँख-नाक बनाओ। अब कुछ जुगत सोचो उनके पंख, डंक आदि बनाने की।

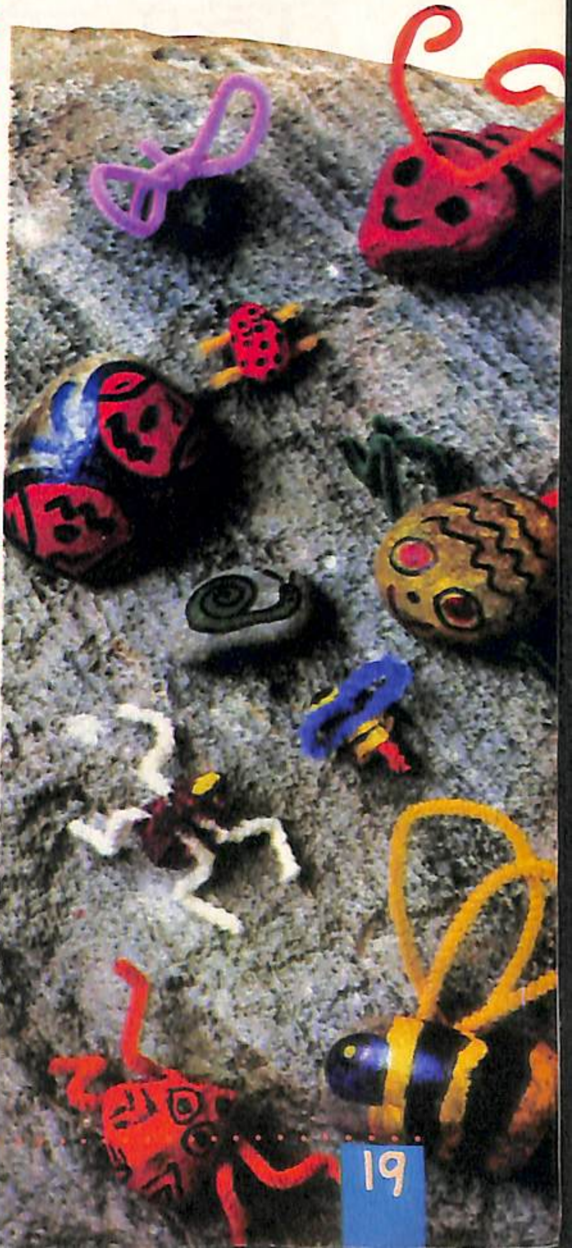

दिलीप चिंचालकर

मन में झाँकने की खिड़की हैं बच्चों के चित्र

दुनिया में सबसे अच्छे चित्र बच्चे बनाते हैं। बड़े-बड़े चित्रकारों से भी अच्छे। इसीलिए तो जिन चित्रकारों का खूब नाम होता है उनके चित्र बच्चों के चित्रों जैसे होते हैं।

इसका सीधा-सा कारण है – बच्चे ज़रा भी परवाह नहीं करते हैं कि यह चीज़ ऐसी ही होनी चाहिए या वह चीज़ वैसी ही। यानी ज़रूरी नहीं कि पेड़ हरा ही होना चाहिए या आकाश नीला ही। उनके लिए पेड़ गुलाबी हो सकता है और आकाश केसरिया, पीला या लाल कुछ भी। बच्चों की बनाई गाय के पाँच पैर हो सकते हैं। वे तो दुम ही बनाते होंगे, अगर बड़ों को वह पैर लगे तो बच्चे क्या करें! बच्चों के हिसाब से आम तौर पर मनुष्यों की गर्दन नहीं होती। सिर से ही हाथ-पैर और धड़ निकल आते हैं। वैसे लम्बी गर्दन से उन्हें कोई परहेज़ नहीं होता।

ज़रा सोचो। क्या फूलों से लदा चेरी का पेड़ सफेद-गुलाबी नहीं दिखता? क्या सितम्बर के महीने में आकाश सुर्ख रंगीन नहीं होता? इनकी सुन्दरता पर हर कोई लट्टू हो जाता है। फिर वैसे चित्र बनाने से एतराज़ क्यों? किसी चीज़ को कोई कैसे देखता है या बनाता है इसमें उसकी कल्पना की बड़ी भूमिका होती है। और कल्पना अगर किसी से बँध गई तो वो कल्पना क्या!

पैबलो पिकासो का जन्म 1881 में स्पेन में हुआ था। कला की शुरुआती शिक्षा उन्हें उनके पिता से मिली। पिकासो ने पेंटिंग के अलावा स्टेज डिज़ाइनिंग की और मूर्तियाँ भी बनाईं। उन्होंने पेंटिंग में लगातार नई शैलियों का आविष्कार किया। वे कबाड़ से जुगाड़ भी किया करते थे। जैसे उनकी एक मूर्ति – सांड का सिर – एक पुरानी साइकिल के दो टुकड़ों से बनी है। भावों (जैसे प्यार, जलन, दुख, सुख) को पेंटिंग में लाना पिकासो की महान देन है। पिकासो की मृत्यु 1973 में हुई।

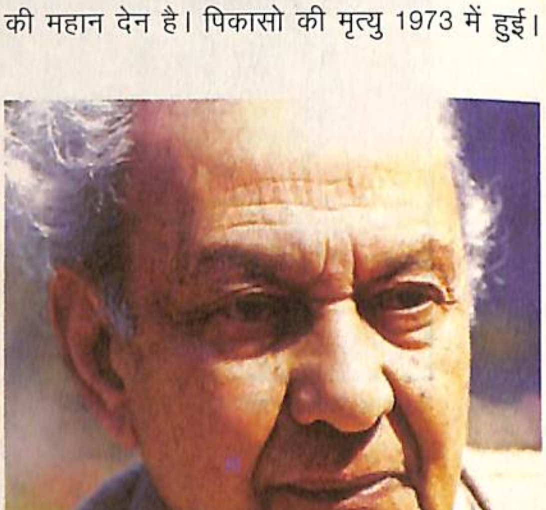

सैयद हैदर रज़ा का जन्म 1922 में मध्यप्रदेश में हुआ था। कला की शिक्षा उन्होंने नागपुर स्कूल ऑफ आर्ट और जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट, मुम्बई से प्राप्त की। 1950 से वे पैरिस में रह रहे हैं।

रज़ा अपनी पेंटिंग में चटख रंगों का इस्तेमाल करते हैं। जंगलों में बिताए उनके बचपन की यादें और भारतीय अध्यात्म उनकी पेंटिंग में काफी दिखता है। 1997 में मध्यप्रदेश की सरकार ने उन्हें कालीदास सम्मान से नवाज़ा।

पिकासो की पेंटिंग

रज़ा की पेंटिंग

हमारी कोशिश इस पन्ने पर बच्चों की सरलता और बड़ों के अनुभवों को मिलाकर देखने की रहेगी। बहरहाल, इस बार हम ध्यान रखेंगे किः

1. चित्र में आकार-आकृतियाँ सरल हों। चित्र की सजावट इतनी अधिक न हो कि जो बात हम बताना चाह रहे हैं, वह उसमें खो ही जाए।
2. मन में कोई रोक-टोक मत मानो कि अमुक चीज़ अमुक ढंग से ही बनाई जाए या अमुक रंग की ही हो। चित्र, कविता, कहानी में मन की बात कही जाती है, और मन में कुछ भी हो सकता है।

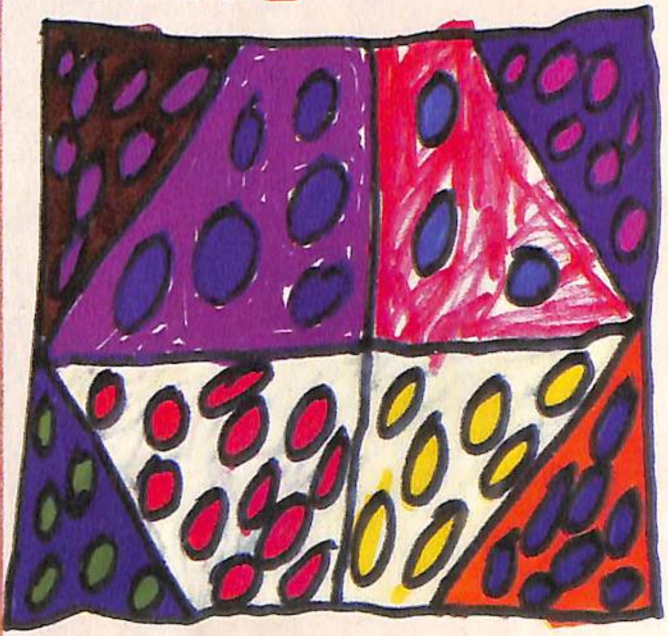

अभी रात ही थी जब सूर्य चमकने लगा था...

तेजी ग्रोवर

म्यसा झील में उस रात एक बड़ा-सा लाल गोला डूबने की कोशिश कर रहा था। यह बात इसी साल यानी 2007 की गर्मियों की है। म्यसा झील नॉर्वे के शहर लिल्एहामेर में है, या कह सकते हैं कि यह नन्हा-सा पहाड़ी शहर म्यसा झील के किनारे पर बसा हुआ है। जून का महीना था। पच्चीस हज़ार की आबादी वाला यह शहर दुनिया भर से आए कवियों और लेखकों से भरा हुआ था। मैं भी थी उन सब लोगों के बीच। मैं खुश थी कि मैं वहाँ थी, क्योंकि उत्तरी यूरोप की ठण्डक भरी सफेद रातें मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। हम सब लोग पृथ्वी के इस हिस्से की "गर्मी" में घूम रहे थे और एक दूसरे से गरम कपड़े माँगते फिर रहे थे।

एक बार फिर मैं म्यसा झील के आसपास की उस सफेद रात को आश्चर्य से देख रही थी। फिर वही हुआ। सूरज का जलता हुआ सुर्ख गोला एक बार तो पानी में पूरा का पूरा डूब गया। लेकिन आसमान तब भी नीला-लाल बना हुआ था। कुछ समय बाद, सूर्यास्त के रंगों से कुछ ही दूरी पर, सूर्य उदय होने लगा था। सूर्य के डूबते और उगते हुए रंग एक-दूसरे में हिलमिल रहे थे। वह गरम-गरम सूरज जैसे अपना मुँह धोकर आसमान में वापस चढ़ा आ रहा था।

मुझे पता ही नहीं चला कि पंछी साँझ के गीत गा रहे थे या सुबह के। सफेद जलपक्षी, बत्तखें, और वह काली गायिका (ब्लैकबर्ड) – ये सब परिन्दे सूर्य के स्वागत में ऐसे चहक रहे थे जैसे बहुत समय बाद सवेरा हुआ हो। मैं सूर्य के डूबने और उगने के बीच का समय ठीक-ठीक नहीं बता सकती। अपने अनुभव से तो नहीं।

मैंने कुछ और लोगों को भी यह कहते हुए सुना है। वे कोशिश करते हैं कि घड़ी देखकर पता लगा पाएँ, लेकिन वे भूल जाते हैं। सफेद रातों में मिले इस सुख की एक वजह तो यह भी है कि हम समय को भूल जाते हैं। उस रात मैं खासतौर से ब्लैकबर्ड के कठिन राग को अच्छे से सुन रही थी। इस काली चिड़िया के बारे में अमरीकी कवि वॉलेस स्टीवन्ज़ ने कहा है:

उत्तरी ध्रुव पर डूबता सूरज, उगता चाँद — फोटो - बिमल श्रीवास्तव

नदी बह रही है
काली चिड़िया
ज़रूर उड़ रही होगी।

ब्लैकबर्ड की संगत में सफेद जलपक्षी ज़ोर से किकिया रहे थे। हंसों की एक जोड़ी उगते हुए लाल सूरज के सामने से तैरती हुई निकल रही थी। भारत से आए हुए मुझ मनुष्य यात्री को लग रहा था कि न तो रात हुई है, न सवेरा। अँधेरे और उजाले से रात और दिन मेरे मन में बने हुए थे। मैंने सोचा यहाँ लिल्एहामेर से और उत्तर में चली जाऊँगी, तब तो यह गोला डूब ही नहीं पाएगा। गेंद के एक टप्पे की तरह तुरन्त ऊपर आ जाएगा। *पान* नाम से एक नॉर्वीजी उपन्यास में मुझे उत्तर नॉर्वे की गर्मी के दिन याद आ रहे थे। क्नुत हाम्सुन ने उसी देश के उत्तरी भाग की गर्मी के बारे में लिखा हैः

"सूर्य मुझे गलत समय बताता है।"

"हवा उड़ते हुए कीड़ों से चमक रही है।"

"अभी रात ही थी जब सूर्य चमकने लगा था और सुबह के लिए गीली ज़मीन को सुखा रहा था।"

"फिर जल्दी ही रात होना बन्द हो गई। सूर्य मुश्किल से अपना चेहरा समन्दर में डुबोता था, फिर ऊपर आ जाता था...।"

म्यसा झील के किनारे उसी सूर्य के दर्शन करते समय मुझे उत्तरी यूरोप की अपनी एक और यात्रा याद आने लगी। वह 1998 की बात थी और मुझे फिनलैण्ड के शहर ऊलु जाना था। उस शहर की कल्पना मैंने ऐसे की थी कि ऊलु से कुछ ही दूर उत्तर की दिशा में पृथ्वी शीघ्र ही अपनी कम होती गोलाई में सिमट जाने वाली थी।

उत्तरी यूरोप की गर्मी का वह मेरा पहला अनुभव था। मेरे साथ मेरी एक कवि मित्र भी थी। वह कन्नड़ भाषा में बहुत सुन्दर कविताएँ लिखती है। उसका नाम है प्रतिभा नन्दकुमार। हम दोनों को भयंकर भूख सता रही थी क्योंकि हवाई यात्रा में हमें शाकाहारी भोजन नहीं मिल पाया था। वह भी पृथ्वी के इतने उत्तरी भाग में पहली बार आ रही थी। ऊलु पहुँचते-पहुँचते हम दोनों की भूख इतनी भड़क चुकी थी कि खाना खा चुकने के बाद ही कुछ दिखाई देता।

हमने अपने रात के ठिकाने पर सामान रखा और भोजन की तलाश में तुरन्त सड़क पर निकल आए। काँच और स्टील की बनी इमारतों से पूरा शहर जगमगा रहा था। भयंकर साफ-सुथरा शहर था वह। बर्फानी हवाएँ चल रही थीं और खूब अच्छी ठण्डी धूप थी। भारत में जून की गर्मी में जो सामान पैक किया था, उसमें उन हवाओं से खुद को बचाने के लिए कुछ नहीं था। मैंने पीले रंग का घाघरा पहन रखा था, और सिन्दूर की लाल बिन्दी लगा रखी थी। जिस गली में हम लोग चल रहे थे उसका नाम था – किरक्कोकादु (शायद गिरजाघर गली)। प्रतिभा ने मुझसे ज़्यादा समझदार कपड़े पहन रखे थे – जीन्स और स्वेटर। वह गली एकदम सुनसान थी। सारी दुकानें बन्द। सभी रेस्तराँ बन्द। गिरजाघर की लम्बी परछाईं पर खड़े होकर हमने सोचा – क्या दिन की चमकती धूप में हमने कभी इतना सूना शहर देखा है? खैर,

हम लोग किसी तरह घूमते-घामते बन्दरगाह तक पहुँच गए। पानी में कोई नाव भी नहीं थी... हाँ, मार्किट से गुज़रते समय हमने एक पुराना भाप का जहाज़ ज़रूर देखा था। उस जहाज़ के अन्दर भी एक कैफे था, जो बन्द था। सामने पानी में शहर की लाइब्रेरी और शहर का थियेटर लम्बे डण्डों पर खड़ा था। बाद में हमें बताया गया कि ऊलु के बारे में एक चुटकुला है कि इस शहर ने अपनी इमारतें पानी में रख छोड़ी हैं और कश्तियाँ ज़मीन पर!

प्रतिभा और मैं जब भूख से बिलबिलाते हुए कई घण्टे शहर की कई गलियाँ नाप वापस लौट रहे थे, तो शहर का इतना साफ-सुथरा होना हमें अच्छा नहीं लग रहा था। उस भयंकर तेज़, ठण्डी धूप से भरी हवा में किसी भी किस्म की कोई गन्ध नहीं थी। मुझे चाँदनी चौक की पराठों वाली गली की याद आ रही थी। प्रतिभा शायद मन ही मन केले के पत्तों पर परोसे जाने वाले कर्नाटक के पारम्परिक भोजन को याद कर रही थी, जिसमें एक-एक चीज़ परोस मेहमानों को ठीक से खिलाने में तीन घण्टे का समय लगता है। होटल वापस पहुँचकर हम लोग सीधे रिसेप्शन पर बैठी प्यारी-सी लड़की के पास जा धमके। "इक्सक्यूज़ मी, क्या होटल की रसोई से कुछ खाने को मिलेगा?" मैंने बड़े प्यार से पूछा। "लेकिन इस होटल की रसोई तो रात के ग्यारह बजे बन्द हो जाती है।" वह उतने ही प्यार से मुस्कुराते हुए बोली। मैं इस बात को कैसे भूल सकती हूँ कि उसके पीछे की खिड़की में सूरज का लाल-सुर्ख बड़ा-सा गोला मुझे अच्छे से दिखाई दे रहा था। लेकिन अभी रात के ग्यारह कहाँ बजे हैं? मैंने पूछा। उसने अपनी पीछे की दीवाल-घड़ी की ओर इशारा किया और फिर शरारत-भरी आँखों से मुस्कुराने लगी। घड़ी में तीन बजे थे। मैं मूर्खों की तरह प्रतिभा का मुँह ताकने लगी। और वो जैसे दिन-रात और समय के सारे खेल को समझ आँखें फाड़े मेरी ओर देखकर बोली, "हे भगवान! मालूम है, तेजी, ये तो सुबह के तीन बज रहे हैं। याद है हम पैरिस से कब चले थे!"

ऊपर रोशनी से भरे हुए अपने कमरे में पहुँचकर मैंने आईने में अपने उतरे हुए भूखे चेहरे को देखा। सिन्दूर की बिन्दी ऊलु की हवाओं में लगभग उड़ चुकी थी... और मुझे अचानक उन घुप्प-अँधेरे दिनों की याद हो आई जब मैं नौ अन्य लेखकों के साथ भारत से पहली बार बाहर निकल सीधे स्वीडन के पतझड़ में पहुँच गई थी।

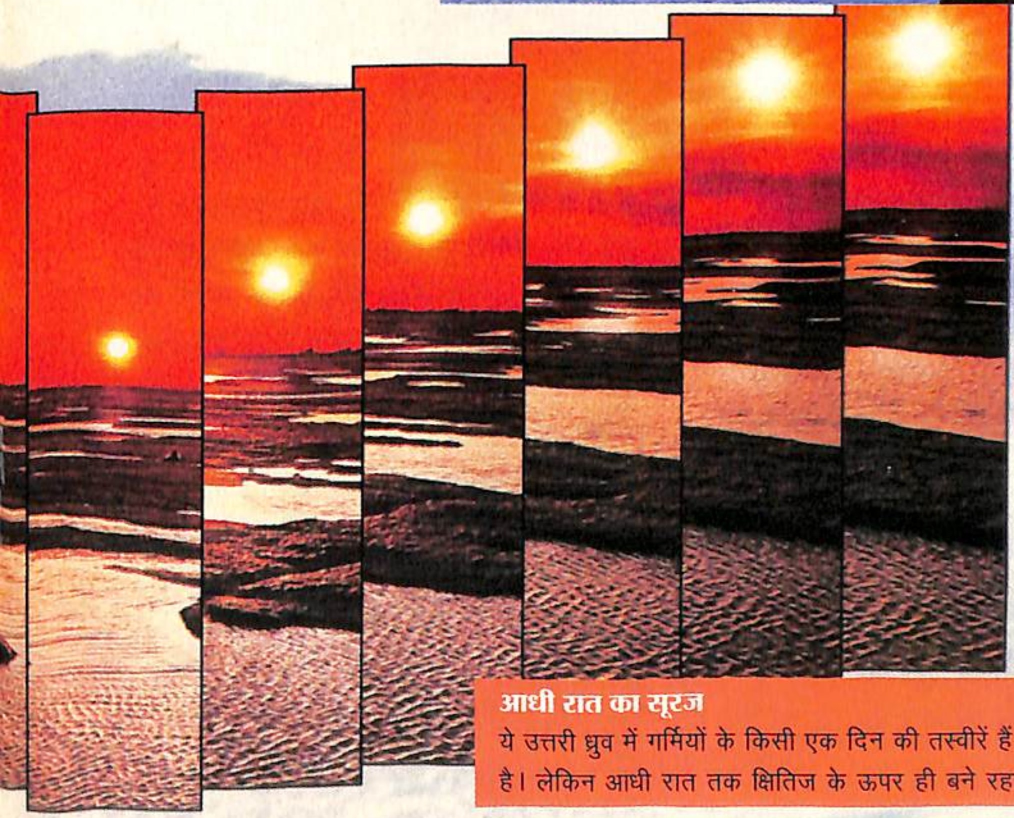

आधी रात का सूरज

ये उत्तरी ध्रुव में गर्मियों के किसी एक दिन की तस्वीरें हैं। शाम होते ही लगता है कि सूरज बस ढलने ही वाला है। लेकिन आधी रात तक क्षितिज के ऊपर ही बने रहने के बाद वह फिर से चढ़ता दिखाई देने लगता है।

शान्ता रामेश्वर राव

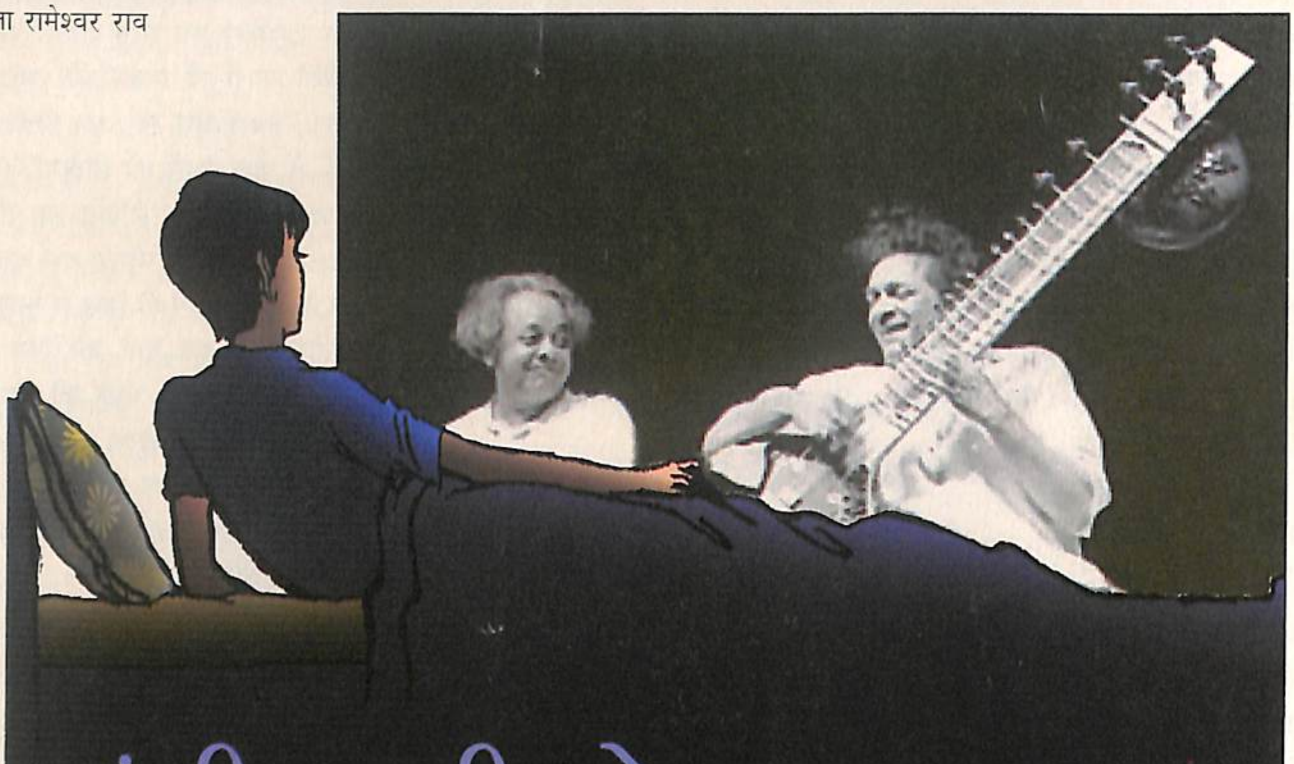

संगीत की वो शाम

मुम्बई के एक छोटे-से अपार्टमेंट में रहने वाली एक सोलह वर्षीया लड़की सुबह-सुबह अखबार देखकर अचानक चहक उठी, "अरे! कल पंडित रविशंकर का षण्मुखानन्दा सभाग्रह में कार्यक्रम है।"

"श्शश ...," लड़की की माँ ने बिस्तर पर लेटे एक लड़के की ओर इशारा करते हुए कहा, "तुम उसे जगा दोगी। तुम जानती हो ना कि उसे आराम और नींद की कितनी ज़रूरत है।"

लेकिन बिस्तर पर लेटा वह लड़का जाग रहा था। "पंडित रविशंकर... सितार वादक पंडित रविशंकर!" वह बोल उठा। कुछ पलों के लिए अपनी कोहनियों के बल वह थोड़ा-सा उठने को हुआ और फिर से बिस्तर पर लेट गया। उसकी आँखों में पंडितजी का नाम सुनते ही एक चमक-सी आ गई थी। "हमें यह मौका नहीं चूकना चाहिए। मैं तो हमेशा से ही पंडितजी को देखना और सुनना चाहता था।"

"लेट जाओ, बेटे, लेट जाओ," माँ ने उसके पास आते हुए कहा। "बिना किसी सहारे के उठ गया," वे बुदबुदाईं और उनकी आँखें कोने की अलमारी में रखे अराध्य देव की ओर मुड़ गईं। वे मन ही मन प्रार्थना करने लगीं।

"मैं उन्हें देखना और सुनना चाहूँगा," लड़का फिर बोला। "यह बहुत ही सुनहरा मौका है। जीवन में शायद एक बार मिलने वाला मौका!" इतना कहते ही वह खाँसने लगा और साँस लेने के लिए तड़पने लगा। उसे तुरन्त बिस्तर के नीचे रखे ऑक्सीजन सिलेंडर से ऑक्सीजन दी गई। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें अब भी एकटक अपनी बहन को देखे जा रही थीं।

उसका भाई अनन्त धीरे-धीरे मौत की ओर बढ़ रहा है। कैंसर! उसका भाई इसी बीमारी से जूझ रहा था। लेकिन इसके बावजूद स्मिता खुद को दिलासा दिला रही थी कि जल्दी ही सब कुछ ठीक हो जाएगा। चार लोगों का उसका परिवार फिर से गगनपुर में खुशी से रहने लगेगा।

कैंसर से जूझ रहा उसका भाई अभी केवल पन्द्रह साल का है। वह स्कूल में टेबल टेनिस का सबसे अच्छा खिलाड़ी है। और सबसे तेज़ दौड़ाक भी। अनन्त को सितार का बड़ा शौक है। वे दोनों गगनपुर में सितार बजाना सीख भी रहे थे। अनन्त कई बार अपनी धुनों से गुरुजी तक को अचम्भे में डाल देता था। फिर एक दिन उसे पता चला कि उसे कैंसर ने घेर लिया है। और उपचार के लिए वे लोग मुम्बई के इस कैंसर हॉस्पिटल में आ गए।

वे लोग जब भी मुम्बई आते हैं, अपनी सुशीला आंटी के घर पर ही ठहरते हैं। आंटी का घर वैसे तो बहुत बड़ा नहीं है। लेकिन उनके लिए उस घर में कभी जगह की कमी महसूस नहीं हुई।

विज्ञान के चमत्कार के सहारे वे लोग उम्मीद लगाए बैठे हैं। वे खुद को दिलासा देते आए हैं कि यहाँ से अनन्त पूरी तरह से स्वस्थ होकर जाएगा। वह फिर से न सिर्फ चलने, दौड़ने लगेगा, बल्कि अगले टेबल टेनिस टूर्नामेंट में हिस्सा भी ले सकेगा। यही नहीं, वह फिर से सितार भी बजा पाएगा और शायद एक दिन बहुत बड़ा और महान सितार वादक बनेगा। लेकिन उसकी हालत दिन-ब-दिन बिगड़ती जा रही है। डॉक्टरों ने तो कह दिया है, "अनन्त को घर ले जाओ। उसे वह सब कुछ दो जो वह चाहता है।" शायद डॉक्टर जानते हैं कि अनन्त के पास अब ज़्यादा दिन नहीं हैं। लेकिन वे इसे ज़ाहिर भी नहीं होने देते। वे अनन्त को खुश रखने के लिए उसके सामने हँसते हैं, मुस्कुराते हैं, बातें किया करते हैं। वे उसकी हर इच्छा पूरी करते हैं। वो जो चाहता है उसे ला देते हैं। अब अनन्त पंडित रविशंकर के कार्यक्रम में जाना चाहता है।

पंडितजी को सुनना उसके लिए स्वप्न जैसा ही था। इसके बाद जैसे ही पंडित जी ने सितार के तार छेड़े, स्वर लहरियाँ हवा में गूँजने लगीं।

"जाना, ज़रूर जाना। पर पहले तुम ठीक तो हो जाओ," माँ ने कहा। "और फिर पंडितजी का यह कोई आखिरी कार्यक्रम थोड़े ही है।"

स्मिता खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गई और ट्रैफिक की ओर देखने लगी। उसकी आँखों में आँसू थे। "स्मिता, तुम्हें वहाँ ज़रूर जाना चाहिए। पिताजी तुम्हें ले जाएँगे।" माँ ने उससे धीरे से कहा।

स्मिता अपनी आंटी सुशीला के पास जा फूट-फूटकर रोने लगी। उसने भरे गले से कहा, "नहीं, मैं अनन्त के बगैर कैसे जा सकती हूँ? मैंने और उसने हर काम साथ-साथ किया है।"

"तुम्हें थोड़ी देर के लिए बगीचे में चले जाना चाहिए। वहाँ तुम्हें अच्छा लगेगा," सुशीला आंटी ने कहा। स्मिता बगीचे में पहुँची। वहाँ लोग घूम-फिर रहे थे। कुछ लोग दौड़ रहे थे। कुछ खेल रहे थे। कुछ योग में लीन थे। कुछ लोग कसरत कर रहे थे, तो कुछ बत्तखों को दाना डाल रहे थे। लेकिन स्मिता इतने सारे लोगों के बीच भी खुद को अकेला महसूस कर रही थी। उसकी सोचने-समझने की ताकत ही मानो चली गई थी। अचानक, उसके दिमाग में एक ख्याल आया। और उसने मन ही मन सोचा – क्या वे मानेंगे! वह तुरन्त घर लौट आई। उसने खुद से कहा, "कोशिश करने में क्या हर्ज़ है?"

"कार्यक्रम में जाना अच्छा रहेगा। पता नहीं, फिर पंडितजी को सुनने का मौका मिले, न मिले," घर पहुँचकर उसने माँ से कहा। स्मिता की बात सुन उसके पिता भी टिकट खरीदने पर राज़ी हो गए। अगले दिन जैसे ही स्मिता और उसके पिता कार्यक्रम में जाने के लिए रवाना होने लगे, अनन्त ने मुस्कुराते हुए कहा, "खूब मज़े करना, तुम किस्मतवाली हो।" यह कहते हुए अनन्त का दर्द उसकी आवाज़ से साफ छलक रहा था।

कार्यक्रम स्थल पर पहुँचकर स्मिता अपने पिता की बगल में बैठ गई। पंडित रविशंकर का गर्मजोशी से स्वागत हुआ। पंडितजी को सुनना उसके लिए स्वप्न जैसा ही था। इसके बाद जैसे ही पंडितजी ने सितार के तार छेड़े, स्वर लहरियाँ हवा में गूँजने लगीं। स्मिता को लग रहा था मानो किसी ने सम्मोहन के द्वार खोल दिए हों। लेकिन तरह-तरह के रागों के बीच भी उसकी योजना उसके दिमाग में मज़बूती से जमी हुई थी। तबले की हर थाप के साथ उसे अपने भाई के शब्द याद आ रहे थे, "जीवन में शायद एक बार...।"

कार्यक्रम खत्म हुआ। लोग खड़े होकर तालियाँ बजाए चले जा रहे थे। तभी एक घनी मूँछों वाला व्यक्ति मंच पर आया और उसने एक लम्बा उबाऊ भाषण दिया। उसके बाद गुलदस्ते भेंट करने की बारी आई। फिर तालियाँ बजीं और पर्दा गिर गया। लोग बाहर जाने लगे।

स्मिता ने सोचा यही सही समय है। उसने अपना रास्ता बदला और भीड़ से उलट मंच की ओर दौड़ पड़ी। उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था। मंच पर पंडितजी कुछ लोगों से कार्यक्रम के बारे में बातें कर रहे थे। उनके साथ प्रसिद्ध तबला वादक उस्ताद अल्ला रक्खा खान भी थे। वहाँ पहुँचकर स्मिता के पैर काँपने लगे। गला सूखने लगा। फिर भी वह उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। "पंडि..ज्जी," मुँह से मुश्किल से शब्द फूटे।

"जी हाँ?," पंडितजी ने हैरानी से, लेकिन पूरी नरमी से पूछा।

स्मिता ने अपनी पूरी कहानी सुना दी। अनन्त की बीमारी, उसका इलाज, उसकी इच्छा – सब कुछ बता दिया।

"क्या आप सुशीला आंटी के घर आकर भाई के लिए सितार बजाएँगे?" स्मिता ने एक साँस में पूछ लिया। "प्लीज़, प्लीज़," वह हाथ जोड़े खड़ी रही।

"बच्ची, पंडितजी बहुत व्यस्त हैं। तुम्हें ऐसी गुज़ारिश कर उन्हें परेशान नहीं करना चाहिए," वही भाषणवाले, मूँछवाले आदमी ने कहा।

लेकिन पंडित रविशंकर मुस्कुराए और उस मूँछवाले व्यक्ति को इशारा कर चुप रहने को कहा। फिर वे उस्ताद अल्ला रक्खा की ओर मुड़े और कहा, "क्या कहते हो उस्ताद?"

उस्ताद ने मुँह में रखे पान को एक से दूसरी तरफ करते हुए कहा, "चलते हैं, कल सुबह। ठीक है?"

"हाँ," पंडितजी ने जवाब दिया। "तो फिर तय रहा," वे बोले।

स्मिता की खुशी का ठिकाना न था। जब वह घर लौटी, तब तक बहुत रात हो चुकी थी। लेकिन अनन्त अब भी जाग रहा था और सिलेंडर से साँसें ले रहा था।

"तुमने सुना?" वह आहिस्ता-से बोला।

"हाँ," स्मिता ने जवाब दिया। "वे कल उस्ताद के साथ आकर तुम्हारे लिए सितार बजाएँगे।"

अगले दिन सुशीला आंटी के पड़ोसियों को अपनी आँखों पर भरोसा नहीं हो रहा था। "अरे, यह तो कमाल है," टैक्सी से उतरते रविशंकर और अल्ला रक्खा खाँ को देखकर उनके मुँह से यही निकल रहा था।

पंडित रविशंकर और उस्ताद अल्ला रक्खा लकड़ी की सीढ़ियों से चढ़कर ऊपर पहुँचे। दरवाज़े पर धीरे से दस्तक दी और अन्दर आ गए। फिर खिड़की के पास रखे दीवान पर बैठ गए। उस्ताद अल्ला रक्खा खाँ के तबले की थाप पर पंडितजी ने उस बालक के लिए राग छेड़ दिए। उसके चारों ओर का माहौल खुशी से भर गया और पूरे सन्तोष के साथ अनन्त की आत्मा धीरे-धीरे अनन्त में लीन होती गई। चक मक

(यह एक सच्ची कहानी है, बस पंडित रविशंकर और उस्ताद अल्ला रक्खा के अलावा अन्य सभी के नाम बदल दिए गए हैं।)

रविशंकर - पंडित रविशंकर का जन्म 1920 में हुआ था। बचपन में ही वे कई तरह के साज़ बजाते और स्कूल में गाते भी थे। छुटपन में ही वे अपने पिता और भाई के साथ पैरिस चले गए। उनके भाई उदयशंकर एक उम्दा नृतक थे। पंडित रविशंकर को यहाँ भारतीय नृत्य व सं गीत के साथ-साथ पश्चिमी संगीत का भी ज्ञान मिला। 1938 से 1944 तक उन्होंने उस्ताद अल्लाउदीन खाँ से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। 1969 में उनकी आत्मकथा *माई म्यूज़िक, माई लाइफ* प्रकाशित हुई।

अल्ला रक्खा - उस्ताद अल्ला रक्खा का जन्म 1919 में जम्मू में हुआ था। अल्ला रक्खा तबले के अलावा हार्मोनियम बजाते थे, गाते थे और संगीत भी रचते थे। 1960-1970 के बीच उन्होंने सितार वादक रविशंकर के साथ देश-विदेश में संगत की। उन्होंने अपने बेटों ज़ाकिर हुसैन और फैज़ल कुरैशी के साथ तबले को नई ऊँचाइयाँ दीं। पहले तबले को आम तौर पर संगत का ही साज़ माना जाता था।

अरविंद गुप्ता

पुस्तक चर्चा

फरडीनैंड की कहानी

गांधी जी की पसन्दीदा किताब

दुनिया भर में शान्ति का सबक सिखाने वाली कहानियाँ बहुत कम हैं। फरडीनैंड की कहानी उनमें शायद सबसे अनूठी है। यह कहानी स्पेन के गृहयुद्ध के बाद सन् 1936 में लिखी गई। कहानी मात्र 800 शब्दों की है। इसे मनरो लीफ ने महज़ एक घण्टे में लिख डाला। लिखा भी क्यों? मनरो लीफ के एक दोस्त थे रॉबर्ट लोसन। लोसन एक चित्रकार थे। उनकी आमदनी बहुत कम थी। लीफ ने यह कहानी इसलिए लिखी कि उनके दोस्त उसके चित्र बनाकर कुछ कमा सकें।

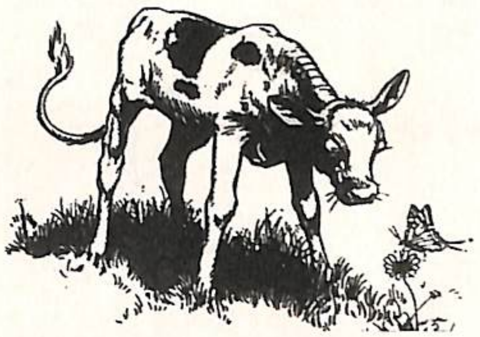

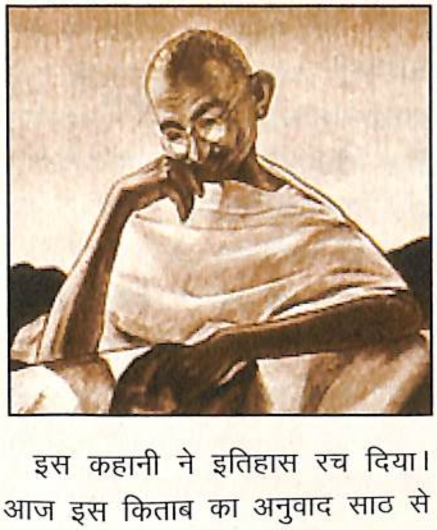

इस कहानी ने इतिहास रच दिया। आज इस किताब का अनुवाद साठ से अधिक भाषाओं में हो चुका है। युद्ध का पुरज़ोर विरोध करने वाली इस कथा पर हिटलर ने पाबन्दी लगा दी। रूस के कम्युनिस्ट नेता स्टालिन को भी पुस्तक कतई नहीं भायी। बहुत कम लोग जानते हैं कि यह किताब गांधी जी के दिल के बहुत करीब थी।

कहानी एक छोटे बैल फरडीनैंड की है। फरडीनैंड के बाकी साथी हमेशा लड़ते-झगड़ते, एक-दूसरे को सींग चुभोते और अपनी मर्दानगी दिखाते थे। फरडीनैंड को इस दंगे-फसाद में कोई रुचि नहीं थी। उसे बस फूलों की खुशबू सूँघने में मज़ा आता था। फरडीनैंड की माँ काफी परेशान रहती। फरडीनैंड बड़ा होकर क्या करेगा? जो बैल लड़ न सके, वो किस काम का?

धीरे-धीरे बहुत साल बीत गए और फरडीनैंड एक बहुत ताकतवर बैल बन गया। एक दिन सबसे शक्तिशाली बैल का चयन करने कुछ लोग स्पेन की राजधानी मैड्रिड से आए। फरडीनैंड को इस सबमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। वो पहाड़ी के ऊपर कॉर्क के पेड़ की छाँव में जा बैठा। वहीं एक ततैया ने उसे डंक मार दिया। फरडीनैंड पागलों की तरह चिल्लाता हुआ दौड़ा। उसका ताकतवर शरीर देखकर चयनकर्ताओं ने उसे तत्काल चुन लिया। फरडीनैंड को मैड्रिड लाया गया। मैड्रिड में बैलों की लड़ाई होनी थी। आगे की कहानी बेहद रोचक है। इसमें फरडीनैंड प्रायोजकों की लाख कोशिशों के बावजूद लड़ता नहीं है।

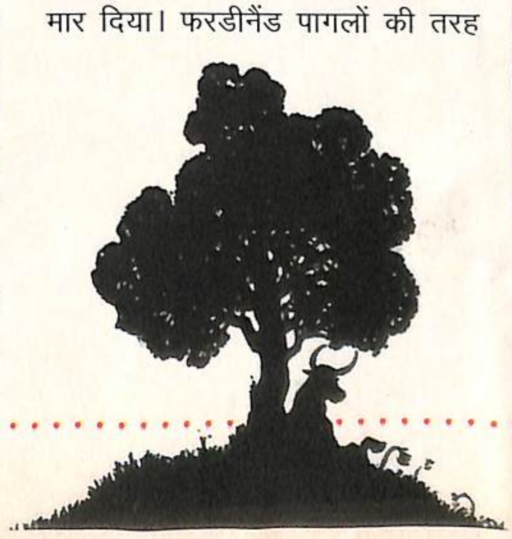

फरडीनैंड की कहानी
लेखकः मनरो लीफ
प्रकाशकः भारत ज्ञान विज्ञान समिति, बेसमेंट यंग विमेंस हॉस्टल क्रमांक 2, जी ब्लॉक, साकेत, नई दिल्ली - 17
मूल्यः 15 रुपए

एक लोकगीत

हेमन्त देवलेकर

टुईयाँ गुईयाँ
ढेम्पूला की चुईयाँ
बेंगी पुंगी चिक्कुल भाकी
नक थुन धाकी भुईयाँ
अब दुन भेला ठुन-ठुन केला
बीन भनक्कम पुईयाँ
हगनू पटला झपड़ तो बटला
शुकमत टमटम ठुईयाँ
गझगन चिम्बू छुकछुन लिम्बू
झलबुल टोला दुईयाँ
टुईयाँ गुईयाँ
किंचुल गोला मुईयाँ

चित्रः अतनु राय

पुस्तक अंश

बापू का लोभ

मनु बहन गांधी 1946 से आखिर तक गांधी जी के साथ रहीं। इस दौरान उन्होंने अपनी डायरी लिखी। जो बाद में *बापू - मेरी माँ* किताब के रूप में प्रकाशित हुई। पेश हैं इसी पुस्तक के कुछ अंश।

एक बार बापू के लिए सुबह पीने का पानी गरम करने में देर हो गई। वहाँ की हवा में बहुत नमी होने से चूल्हा नहीं सुलग रहा था। इसलिए मैंने अपनी एक साड़ी की किनार फाड़कर मिट्टी के तेल में भिगोई। बापू ने पीछे से यह देख लिया। मुझसे बोले, "ज़रा यह चिन्दी दिखाना मुझे।" मैंने बताई। उसे उन्होंने खोला और कहने लगे, "अजी वाह? यह तो नाड़े के लायक चिन्दी है। इसे जलाया कैसे जाए? इसे धोकर सुखा दो। क्या नाड़े बनने जैसी चिन्दी चूल्हा सुलगाने के काम में ली जा सकती है? मैं कितना लोभी हूँ, क्या तुम जानती हो? गरम पानी अगर ज़रा देर से मिलेगा तो क्या हुआ? जिस चिन्दी ने इतना सारा तेल पी लिया! और कहीं इस चिन्दी पर मेरा ध्यान न होता, तो यह जल ही जाती न?"

दो अक्टूबर का दिन बड़े आनन्द से बीता। रात को रेडियो पर सुन्दर कार्यक्रम था। मैंने बापू से कहा, "आज तो आप रेडियो सुनिए!" बापू ने कहा, "इसमें क्या सुनना? ये रेडियो के भजन सुनने की बजाय चरखे का संगीत न सुनें?"

चरखा जयन्ती – भादों वदी बारस – के दिन दिल्ली के गुजराती भाइयों ने अनेक चन्दा इकट्ठा किया था। बापू की तबीयत अच्छी न थी। इसलिए सरदार वल्लभभाई कहने लगे, "इतनी सख्त खाँसी आती है, तब फिर गुजरातियों की मीटिंग में जाना क्यों मंजूर किया? पर आप तो इतने लालची हैं कि जहाँ सुना कि फलाँ जगह पैसे मिलेंगे तो मरने पड़े हों तो भी जाएँगे। ऐसे फण्ड-वण्ड तो होते ही रहेंगे। यों खों-खों करते जाने की क्या ज़रूरत है? पर मैं जानता हूँ कि आप मेरी बात नहीं मानेंगे।" खूब हँसी उड़ी। बापू और सरदार का ऐसा मीठा सम्बन्ध था।

फिर, जब मीटिंग में सरदार से कुछ बोलने को कहा गया तो वहाँ भी मज़ा आया। सरदार बोले, "आज मेरा थोड़ा-ही जन्मदिन है? आप लोग पैसा इकट्ठा करके दे तो इन महात्मा को रहे हैं और बोलूँ मैं? मगर बापू तो बनिए हैं और बनिए बड़े लोभी होते हैं। देखिए, इतनी कमज़ोरी में भी आप लोगों को ठगने की ताकत इनमें आ ही गई। (खूब हँसी उड़ी।) अब मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि इन्हें आराम करने दीजिए।"

डाक टिकटों में गांधी जी

दुनिया भर के अस्सी देशों ने गांधी जी पर कुल मिलाकर 250 से ज़्यादा डाक टिकट निकाले हैं। कई बार तो मौका कुछ और था फिर भी टिकट पर गांधी जी ही आए। जैसे निकारागुआ ने "सिनेमा के 100 साल" विषय पर डाक टिकटों की एक श्रृंखला निकाली। जब लंदन में गांधी जी पर टिकट निकालने की बात चली तो वहाँ की संसद में हड़कम्प मच गया। लोग कह रहे थे – वह आदमी जो ब्रिटिश साम्राज्य का सूरज डूबने का कारण बना, उसी पर ब्रिटेन में डाक टिकट क्यों निकलें? इस सबके बावजूद गांधी जी पर ब्रिटेन ने टिकट निकाला।

पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

क्या तुम बनिया हो?

यह घटना शायद 1945-46 की होगी। उस वक्त मुझसे पाँच वर्ष बड़ी मेरी बहन दूर्वा (दूलू) शायद डेढ़-दो साल की थी। अम्मा-पापा अहमदाबाद (गुजरात) के किसी मॉन्टेसरी स्कूल में काम करते थे।

मॉन्टेसरी शालाओं के शिक्षकों की छोटी-सी आय से अम्मा-पापा जैसे-तैसे गुज़ारा तो चला लेते थे, पर गाँव में पापा की मासी को मनीऑर्डर भेजने के बाद खास बचत नहीं हो पाती होगी।

ऐसे में एक बार गांधी जी अहमदाबाद आए। अम्मा-पापा भी नन्ही बिटिया को लेकर उनका भाषण सुनने पहुँचे। बात खत्म करने के बाद उन्होंने जनता से दान की अपील की। उनका जादू उस ज़माने में ऐसा था कि प्रत्येक श्रोता यथाशक्ति दान किए बिना वापस न जाता था।

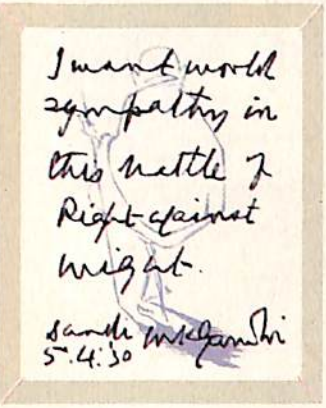

अम्मा-पापा ने भी सलाह की होगी। जेब में शायद एक या दो रुपए का नोट मिला होगा, वही भेंट चढ़ाने की मंशा से वे आगे बढ़े। नोट निकालकर दूलू की मुट्ठी में पकड़ाया गया। ज़रूर यह भी समझाया होगा कि वह नोट उसे गांधी बाबा को दे देना है।

जब वे तीनों गांधी जी के पास पहुँचे तो नन्ही दूलू ने नोट को मुट्ठी में कसकर भींच लिया। गांधी जी ने हाथ बढ़ाया। अम्मा ने गोद में थामी दूलू का हाथ उनकी ओर बढ़ाया, पर मुट्ठी तो बँधी थी। माँ और गांधी जी, ने कोशिश की कि किसी तरह मुट्ठी ढीली हो और नोट निकल आए। पर ना!

गांधी जी हँस पड़े। पूछा, "बनिया हो?" तब बोले, "मैं भी बनिया हूँ।" अबकी बार अम्मा और गांधी जी की शामिल कोशिश से दूलू की उँगलियाँ ढीली पड़ीं। मुट्ठी खुल गई। वह छोटा-सा दान गांधी जी ने स्नेह से स्वीकारा और आगे बढ़ गए।

चित्रः अतनु राय

तुम भी बनाओ

मुकेश मालवीय

हम घोटल-मोटल हैं। तुम भूल तो नहीं गए? तुम्हें नए-नए खेल बताने वाले घोटल-मोटल। मध्यप्रदेश के बैतूल ज़िले के पावरझण्डा गाँव के रहने वाले हैं हम। खैर, बातचीत तो चलती ही रहेगी। वैसे यह तो तुम समझ ही गए होगे कि हम कितने सीधे-सादे बच्चे हैं। थोड़ी बहुत उठा-पटक करते हैं। थोड़ा-सा ऊधम कर लेते हैं, और बस थोड़ा-सा ... तुम यूँ समझ लो कि हम थोड़ा-थोड़ा-सा सब कुछ करते हैं। अब ज़्यादा बात करेंगे तो सम्पादक जी काटकूट देंगे। तो इससे पहले कि उनकी कलम चले हम अपनी पर आ जाते हैं।

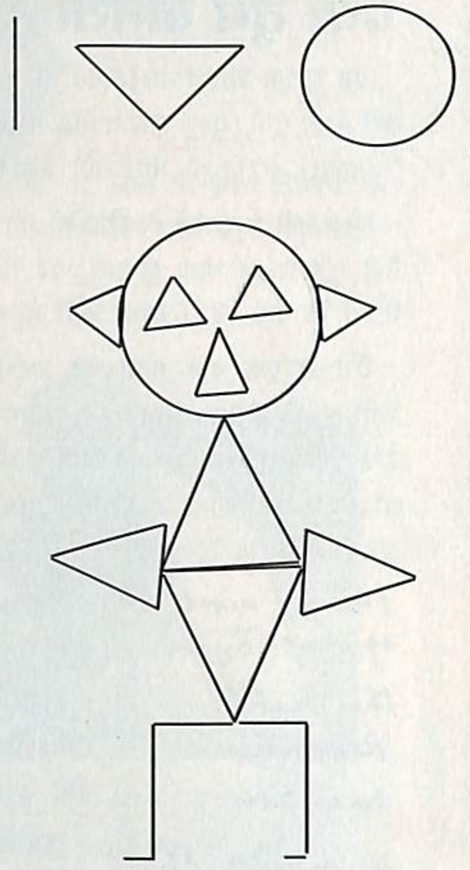

हमारे साथ तीन चीज़ें हैं:

1. एक सीधी लाइन। सीधी इतनी कि चाहे तो इसे अँगुल भर की कर लो, चाहे तो बित्ते भर की। बड़े काम की चीज़ है।
2. एक हैं तिकोने। दूर से देखो तो लगेगा कि तीन सीधी लाइनें एक-दूसरे की तरफ खड़ी होकर कोई प्लान बना रही हैं। इन्हें हमारे गणित वाले गुरुजी कहते हैं त्रिभुज। इन्हें भी जितना मर्ज़ी आए छोटा-बड़ा कर लो। जितना चाहो, जैसा चाहो घुमा लो।
3. एक बात तो हम गोल ही कर दे रहे थे। हमारी मण्डली में एक गोले भी हैं। ये भी मस्त-मौला हैं। ये राई से लेकर सूरज बराबर तक गोल हो सकते हैं।

इन तीनों को हम तुम्हारे पास छोड़े जा रहे हैं। इनको छोटा-बड़ा, घुमा-घुमू के कोई आकृति बनाते रहो। चलो कुछ हम बना के दिखा देते हैं। तो अगले अंक में मिलते हैं। देखते हैं तुमने इन तीनों से क्या-क्या बनाया है!

कृश्न चंदर

गुजराती दाल

कुछ दालें खाने के लिए होती हैं। गुजराती दाल पीने के लिए होती है। उसमें गुड़ भी डालते हैं और नमक भी और दूध भी। ऊपर से अरंडी के तेल का बघार देते हैं। और प्याज़ तथा लहसुन से दूर रखते हैं। पहली बार जब इस दाल की कटोरी मेरे सामने आई तब मैंने धीरे से चमचा चलाकर टटोला। कुछ पता न चला कौन-सी दाल है। फिर उँगली फेरकर मालूम करने की कोशिश की, पर असफल रहा। मजबूरन नेकर पहनकर कटोरी में उतर गया। घण्टे भर की तलाश के बाद पेन्दे में दाल का एक दाना मिल गया। मालूम हुआ, इस दाल में दाना कम होता है, पानी ज़्यादा। "आबो-दाना" का मुहावरा शायद इसी गुजराती दाल ने सुझाया है। फिर वह जुमला भी याद आया कि "दाने-दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम"। दरयाफ्त करने पर मालूम हुआ कि गुजराती दाल की हर कटोरी में पतले शोरबे के साथ दाल का एक दाना डाल दिया जाता है और डालने से पहले उस पर मेहमान का नाम भी छाप दिया जाता है। मैंने सब्र किया और कटोरी उठाकर सारा पानी पी लिया, यह सोचकर कि अपने हिस्से में यही दाना-पानी लिखा हुआ है।

साभार - कृश्न चंदर की कहानी "लड़की दाल बघारती है" का एक हिस्सा।

चित्र पहेली

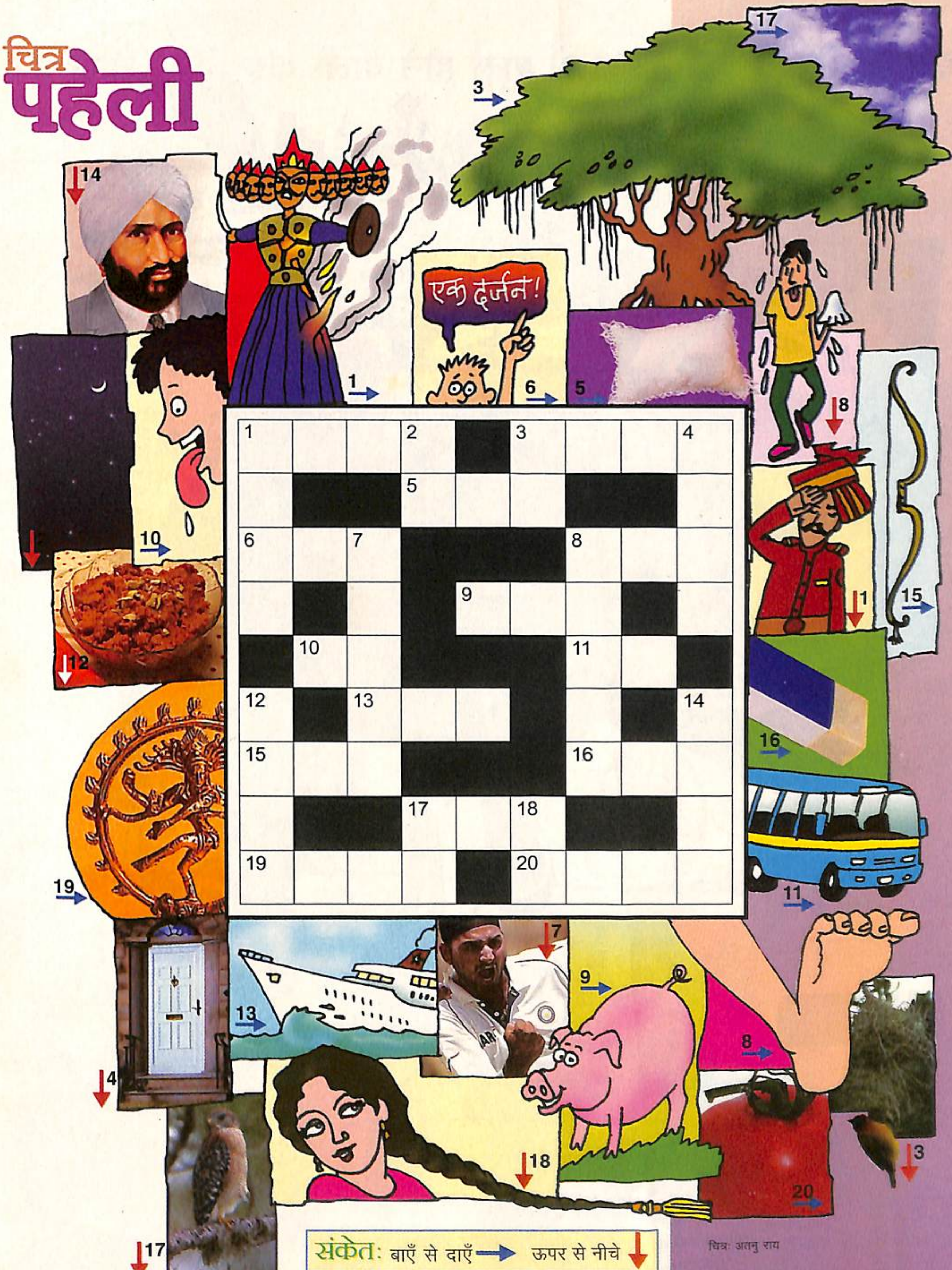

संकेतः बाएँ से दाएँ → ऊपर से नीचे ↓

चित्रः अतनु राय

इस तस्वीर में फ से शुरू होने वाली कई चीज़ें हैं।

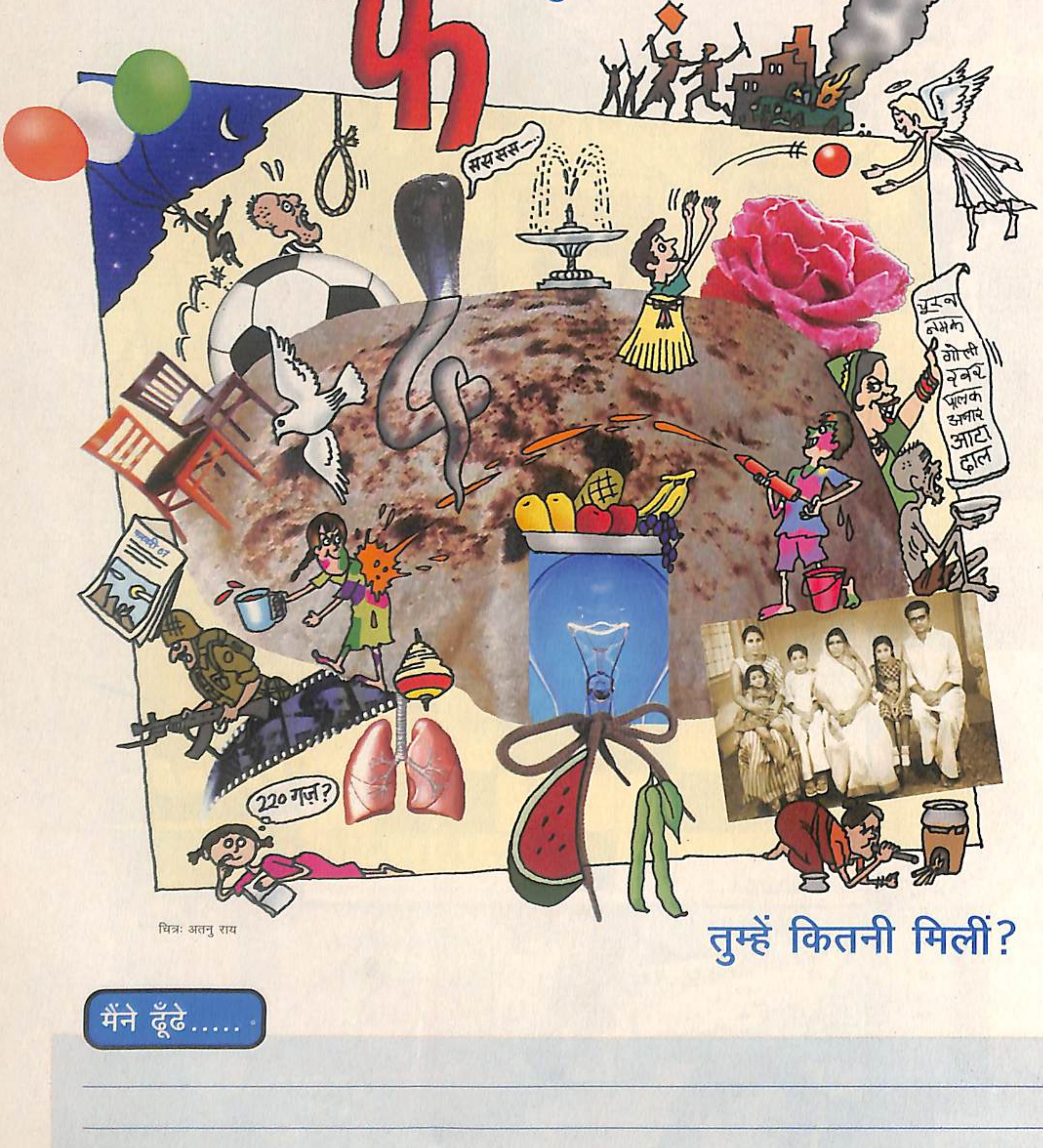

चित्रः अतनु राय

तुम्हें कितनी मिलीं?

मैंने ढूँढे.....

"फ" से और क्या-क्या है जो हमसे छूट गया? चित्र बनाओ।

मेरा पन्ना

मुझे कहते हो ...

मैं जन्मा तब काला था
बड़ा हुआ, तब काला था
धूप में रहा, तब भी काला था
बीमारी में भी मैं काला ही रहा
जब मरा तो भी काला था।

और तुम सफेद लोग
जन्मे तो गुलाबी थे
धूप में लाल
ठण्ड में नीले
डर में पीले
बीमारी में हरे
और जब मरे तो धूसर
और................
तुम मुझे कहते हो *कलर्ड*

इस कविता में "कलर्ड" शब्द से जो खेल किया गया है उसमें "कलर्ड" के दो अर्थ निकलते हैं - "काला" और "रंगीन"। किसी समय अमरीका में बसे अफ्रीकी लोगों को कलर्ड या ब्लैक कहा जाता था। किसी अफ्रीकी बच्चे की यह कविता हमें कंचन माला ने ई-मेल से भेजी है।

बकरी का बच्चा

मैं एक दिन बगीचे में एक आम के पेड़ के नीचे बैठा था। बकरियों का एक झुण्ड चरने आया। उस झुण्ड में एक बकरी का बच्चा भी था। वह चरते-चरते पीछे रह गया। जब बकरियाँ दूर चली गईं तो वह मैं-मैं चिल्लाने लगा। मैंने देखा वह बेशरम की झाड़ी में फँस गया था। मैंने जाकर उसे निकाला। वह निकलते ही उछलते-कूदते भाग गया।

विनोद कुमार, हिरणखेड़ा, होशंगाबाद, म.प्र.

पहेलियाँ

पेड़ में लटकी रहती है
मुँह में पानी लाती है
टेढ़ी-मेढ़ी दिखती है
मीठा स्वाद भी लाती है

दो अक्षर का मेरा नाम
हवा मैं दूँगा करो आराम

प्रस्तुतिः
याशिक कुमार हरसुले, चौथी, देशावाड़ी, बैतूल, म.प्र.

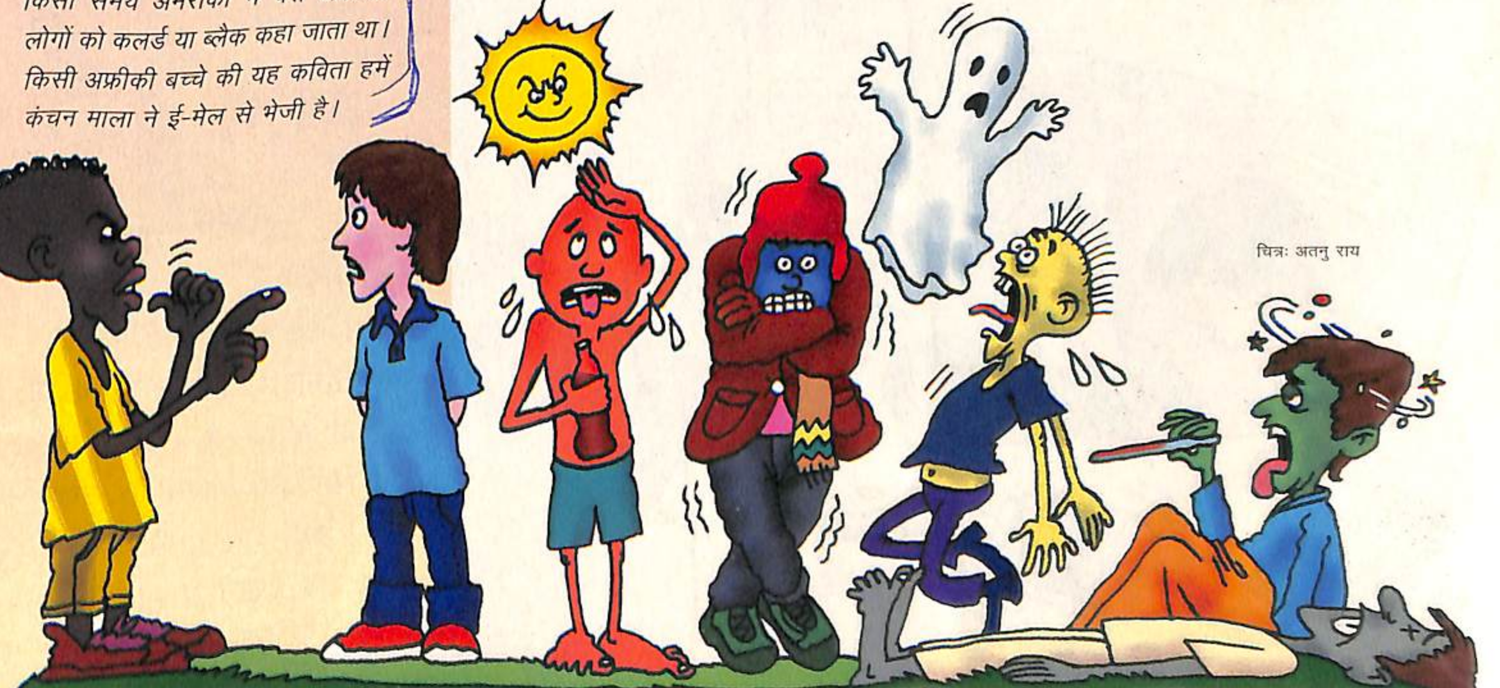

चित्रः अतनु राय

बिचारा अभिषेक!

मेरे घर में एक किलो गोंद है जो एक बड़े डिब्बे में रखा रहता है। वह डिब्बा एक टेबिल के नीचे रखा रहता है। एक दिन मेरे भाई अभिषेक ने, जो एक साल का है, गोंद का डिब्बा उलट दिया। मेरे भाई के हाथ-पैर गोंद से भर गए। उसने अपने हाथों से कुर्सी, पलंग तथा टेबिल पर गोंद पोत दिया। थोड़ी देर में जब गोंद सूखने लगा तो मेरे भाई को चिपचिपा लगने लगा। वह मेरे दादाजी के पास जाकर दादा-दादा चिल्लाने लगा। दादाजी अचानक उठ गए। उन्होंने मेरी माँ को उठाया। माँ ने अभिषेक को डाँटा और उसके कपड़े बदले। मैंने माँ की मदद की। और हम दोनों ने मिलकर पूरे कमरे को साफ किया।

सुयश गोवर्धन, पाँचवीं, गुरुद्वारा स्टेशन रोड, मरोदी, छत्तीसगढ़

चित्रः अतनु राय

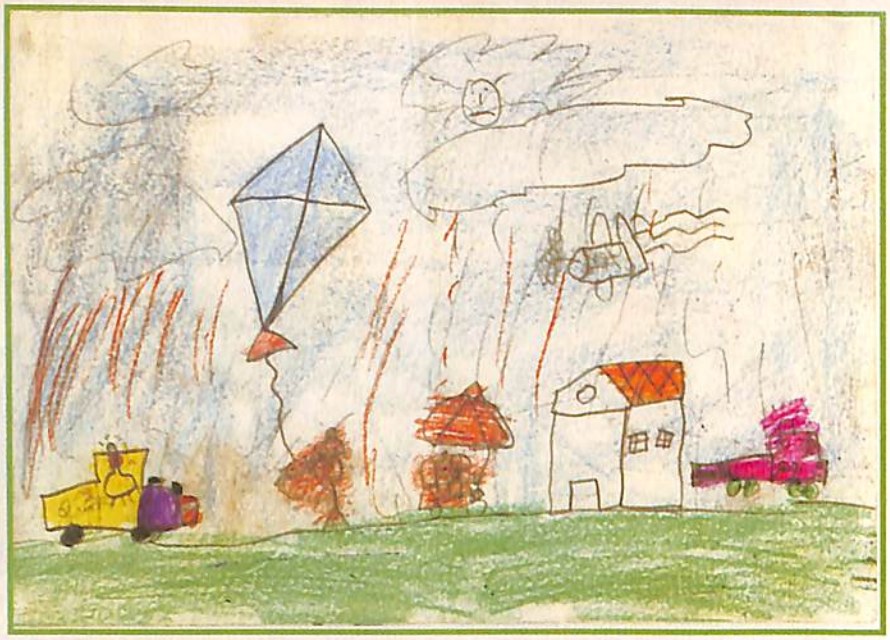

एक दिन

एक दिन मैंने एक चित्र बनाया। चित्र में दो आदमी घूमने जा रहे थे। बाहर बारिश हो रही थी। उन्हें एक हवाई जहाज दिखाई दिया। एक लड़का पतंग लेकर खड़ा था। पतंग गीली होने वाली थी। सूरज डूब रहा था।

चित्र व कहानी :
सृजन चंद्राकर, दूसरी, दुर्ग, छत्तीसगढ़

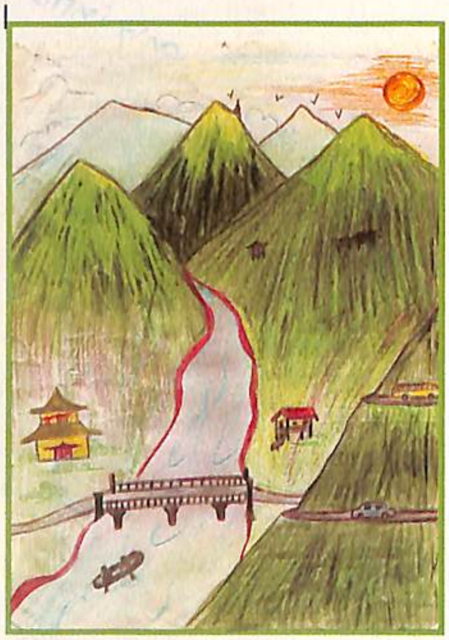

हमारा सिक्किम

हमारा सिक्किम छोटा और सुंदर है। सिक्किम हिमालय पर्वत की गोदी में है। यहाँ दो नदियाँ हैं – रंगित और तिसता। सिक्किम भारत के उत्तर-पूर्व में है। यहाँ सब घूमने आते हैं। और आप सब देखने आइए।

चित्र व कथा : अग्निश्वर दास मित्रा, तीसरी, सिक्किम

कुछ पता नहीं?

बहुत साल पहले पत्र लिखकर ही सगे-संबंधियों का हालचाल जाना जाता था। एक बच्चा था जिसका नाम था उत्कर्ष। उसकी उमर सात साल थी। वह भी अनजान जगहों पर पत्र लिखा करता था। अनजान व्यक्तियों को। एक बार उसका पत्र मेघालय की पहाड़ी में रहने वाले एक आदमी के पास पहुँचा। उसे जीवन में पहली बार कोई पत्र मिला था। ढाई साल पहले उसका एक बेटा जंगल में खो गया था। उसने सोचा ये पत्र उसी का है। उसने पत्र को अपने सीने से लगा लिया। उस पत्र को वह सदा अपने पास रखता।

एक दिन अचानक तेज़ बारिश आई। बारिश में सब कुछ बह गया। पत्र के अक्षर पानी के कारण भीग गए। और मिट गए। उसने किसी तरह उस पत्र को बचा लिया। जंगल की आग में एक बार उसका घर भी जल गया। पर उसने उस दिन भी पत्र को बचा लिया। एक बार बहुत तेज़ आँधी आई। और पत्र को उड़ा कर ले गई।

इस पत्र के उड़ने के बाद वह आदमी मर गया।

उत्कर्ष पाण्डेय, सातवीं, कानूनगोपुरा उत्तरी, बहराइच, उ.प्र.

चित्रः अतनु राय

क्या तुम गाजर और सेब के स्वाद में फर्क कर सकते हो? "जी हाँ, बड़े आराम से!" यही कहोगे न तुम? पर बात उतनी भी आसान नहीं जितनी तुम समझ बैठे हो। हाथ कंगन को आरसी क्या!

चलो आज़माकर देखते हैं। इसके लिए कुछ चीज़ें चाहिए:

- सेब, गाजर, आलू, प्याज़ और शलजम।
- एक तश्तरी।
- आँखों पर बाँधने के लिए कपड़ा, पेन्सिल और कागज़!

ध्यान रहे फलों और सब्ज़ियों के सभी टुकड़े एक ही साइज़ के हों।

करना यह है...

सब्ज़ी और फल के टुकड़ों को तश्तरी में फैलाकर रखो। अपने दोस्त की आँखों पर पट्टी बाँधो ताकि वह इन टुकड़ों को देख नहीं पाए। उससे कहो कि वह अपनी नाक को बन्द रखे, बाएँ हाथ की उँगली-अँगूठे के बीच दबाकर। तश्तरी में रखे फल-सब्ज़ियों के नाम लिख लो। अपने दोस्त को एक-एक करके सभी नमूने खिलाते जाओ। उससे पूछते भी जाओ कि वह क्या खा रहा है। उसके जवाबों को लिखते जाओ।

चित्रः अतनु राय

हाथ नहीं...नाक कंगन को आरसी क्या?

अब तुम खुद इसी तरह इन सबका स्वाद चखो। देखो कि किसने ज़्यादा सही उत्तर दिए – तुमने या तुम्हारे दोस्त ने। तुम पाओगे कि दोनों ने कई गलत अनुमान लगाए हैं।

ऐसा क्यों हुआ? इन गलतियों का रहस्य तुम्हारी नाक में है। तुम्हारी जीभ पर कई सारे छोटे-छोटे उभार होते हैं जिन्हें स्वाद ग्रंथियाँ कहते हैं। इन ग्रंथियों की मदद से हम मीठा, खट्टा, नमकीन, कड़वा आदि स्वाद पहचान पाते हैं। स्वाद की बाकी जानकारी खाद्य पदार्थों की गन्ध आदि से मिलती है। नाक बन्द करने पर कुछ जानकारी मस्तिष्क तक नहीं पहुँचती है। इसीलिए हम खाई जाने वाली चीज़ों को ठीक से नहीं पहचान पाते हैं।

अब तुम समझ सकते हो कि सर्दी-ज़ुकाम की स्थिति में खाने का स्वाद क्यों नहीं महसूस होता है। चक मक

उलझन

जो वादा किया तो....

जगदीश का सबसे जिगरी दोस्त रामप्रकाश है। एक दिन रामप्रकाश उसे बताता है कि उसने हेडमास्टर की अलमारी से पाँच सौ रुपए चुराए हैं। वह जगदीश से कहता है, "वादा करो, तुम यह बात किसी को नहीं बताओगे। चाहे कुछ भी हो जाए।" जगदीश वादा करता है कि यह बात वह किसी को नहीं बताएगा।

अगले दिन पुलिस स्कूल आकर चपरासी के बेटे किशनलाल को चोरी के ज़ुल्म में थाने ले जाती है। जगदीश बहुत परेशान हो जाता है। रामप्रकाश बार-बार उसको वादे की याद दिलाता रहता है। उसे यह भी कहता है, "गाँव में हमारी जात की इज़्ज़त का सवाल है। आखिर, किशनलाल तो नीच जात का है। उसकी इतनी चिन्ता करने की क्या ज़रूरत है?"

जगदीश दुविधा में पड़ जाता है। वह जानता है कि किशनलाल बेकसूर है। पर उसे अपना वादा याद आता है। उसे यह भी मालूम है कि वादा तोड़ेगा तो दोस्ती भी टूट जाएगी। और फिर रामप्रकाश स्कूल और गाँव का दादा भी है। और जात वाली बात भी तो है।

अगर तुम जगदीश की जगह होते तो क्या करते? चुप रहते? वादा तोड़ देते? अपना जवाब कारण सहित लिख भेजो। सबसे अच्छे जवाबों को मिलेगा एक आकर्षक पुरस्कार। और हाँ, उन जवाबों को हम प्रकाशित भी करेंगे। तुम्हारे खत हमें **15 नवम्बर** तक मिल जाने चाहिए।

जब काम बोलता है
तब दुनिया सुनती है
No. 1
इंफ्रास्ट्रक्चर (बिजली, सड़क,पानी) के विकास में सबसे तेज गति
कृषि विकास में देश में सबसे तेज गति
कानून व्यवस्था में पश्चिम में सबसे आगे
(इंडिया टुडे के सर्वे का निष्कर्ष)
प्रिय प्रदेशवासियों,
आप सब को बधाई। यह आप सब के विश्वास का परिणाम है कि हम प्रदेश को इस स्थिति तक लाने में सफल हुए हैं। किसी भी कीमत पर प्रदेश के विकास में प्राण फूंकने का हमारा प्रण है। विकास नारों से नहीं, नीयत से होता है। राजनीति नहीं, कर्मठता से होता है। बातें कम और काम ज्यादा करने से होता है। और साढ़े तीन वर्षों में हमने यही करने का प्रयास किया है। अवरोधों, आरोपों व आलोचनाओं के बीच भी संयम से विकास की गति को बढ़ाया है। ताकि हमारा प्रदेश भी देश का अग्रणी राज्य बन सके। दस सालों के गर्त से निकल कर विकास की होड़ में दौड़ सके।
आज मध्य प्रदेश दौड़ पड़ा है।
अब उड़ान की बारी है।
विकास तो होकर रहेगा।
शिवराज सिंह चौहान
मध्य प्रदेश : उड़ान को तैयार
वि.क्र. D 66200 दि. 6/10/2007

पी. एम. लाड

खरमौर

जुलाई से सितम्बर के बीच यानी बरसात के महीनों में ही खरमौर (लेसर फ्लौरिकन) गुजरात, राजस्थान और पश्चिमी मध्यप्रदेश के कुछ हिस्सों में दिखते हैं।

"साब इधर दिखी थी वो। आप सुबह आना, तब देखने चलेंगे।"

मैंने सुबह आने का कह तो दिया, पर वक्त कटे कैसे? 25-26 साल गुज़ार चुका हूँ पक्षियों के साथ। उनके बीच। कभी नहीं सुना कि खरमौर जुलाई से सितम्बर के बीच के चार महीनों के सिवा कहीं किसी को दिखे हैं। सालिम अली ने तो यहाँ तक कह दिया था कि हम चाँद के छिपे हिस्से के बारे में ज़्यादा जानते हैं, पर खरमौर के बाकी के आठ महीनों के बारे में नहीं। एक बार दो खरमौरों के पाँवों में छल्ले डाले गए। सोचा था इसी तरह पता चल जाएगा कि अक्टूबर से जून तक का समय वे कहाँ बिताते हैं? लेकिन वे लौटकर नहीं आए। कुछ लोगों का कहना है कि नवम्बर के आसपास ये नागपुर के पास कहीं देखे गए हैं। और गर्मियाँ वे दक्षिण भारत में कहीं बिताते हैं। जाने क्या सच है... और अब ये अल्ला रक्खा खाँ कहते हैं कि खरमौर दिखी थी यहाँ। यहाँ यानी गुजरात के वेलावदर नेशनल पार्क में।

किसी तरह रात गुज़री। सुबह हुई। कैमरा, दूरबीन लेकर हम पहुँच गए घास के मैदान में। काफी देर इधर-उधर भटके, पर कुछ न मिला। जब लगा कि अब उसका दिखना सम्भव नहीं, तभी सामने के मैदान में देखा। हाँ,... वो मादा खरमौर ही तो थी। मैंने दूर से ही फोटो खींची। वो मेरे जीवन की भले ही बेहतरीन फोटो न हो, पर बेशकीमती ज़रूर है। (पी. एम. लाड प्रसिद्ध पक्षी विज्ञानी हैं।)

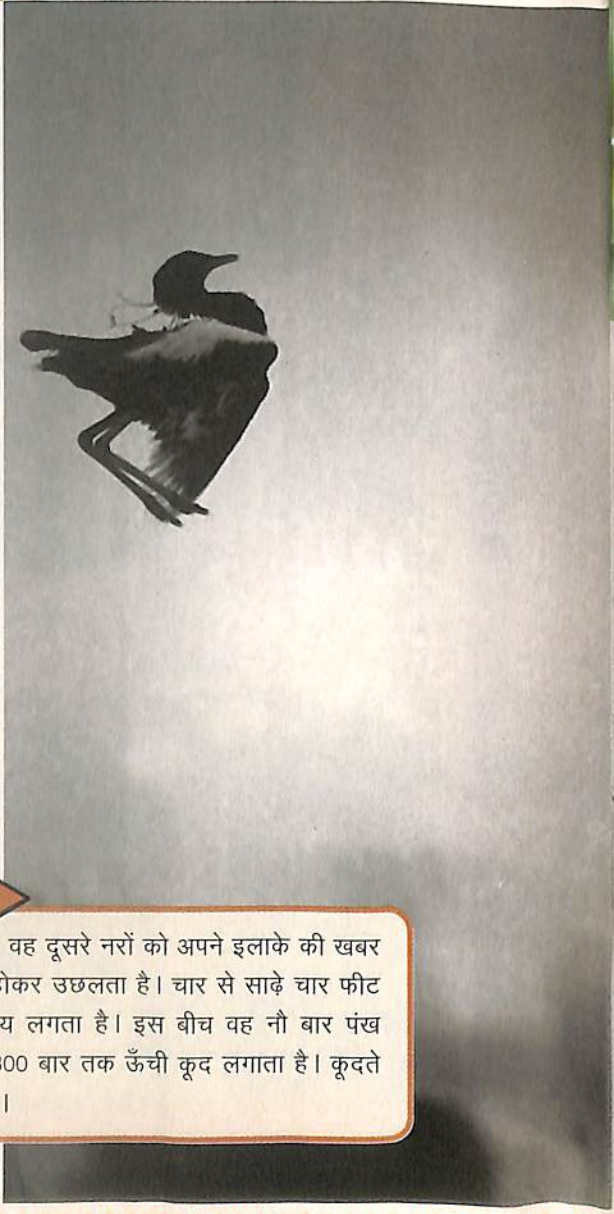

नर खरमौर की एक खास आदत होती है, जो उसकी पहचान भी है। वह दूसरे नरों को अपने इलाके की खबर देने और मादा को आकर्षित करने के लिए एक ही जगह पर खड़े होकर उछलता है। चार से साढ़े चार फीट ऊँची, सीधी उछाल। एक उछाल में लगभग डेढ़ सेकण्ड का समय लगता है। इस बीच वह नौ बार पंख फड़फड़ाता है। जब मादा आसपास हो तो कभी-कभी दिन में 200-300 बार तक ऊँची कूद लगाता है। कूदते समय उसके पंखों से टर्र..टर्र की आवाज़ निकलती है। मेंढक जैसी।

आज खरमौर सिर्फ गिनती के रह गए हैं। इसका मुख्य कारण है खेतों में कीटनाशकों का छिड़काव। इससे एक तो कीड़े-मकोड़े मर जाते हैं जो इनका भोजन हैं। और दूसरा यह कीटनाशक कीड़ों के ज़रिए खरमौर के शरीर में पहुँच जाता है। अगर हालात यही रहे तो कुछ सालों बाद शायद ही हम इन्हें देख पाएँ...

नर और मादा ज़्यादातर अलग-अलग ही दिखते हैं। घास के मैदानों में मादा अण्डे देती है, और उन्हें सेने बैठ जाती है। इसलिए उसे देख पाना बहुत मुश्किल होता है।

अण्डे के पास हाथ क्यों रखा होगा ?

सभी फोटो - पी एम लाड

मध्यप्रदेश के वन विभाग ने खरमौर को बचाने के लिए एक इनामी योजना की घोषणा की है। इसके अनुसार खरमौर का अण्डा या खरमौर बताने वाले को नकद एक हज़ार रुपए मिलेंगे।

एक पक्षी है

सारस

बेहद खूबसूरत, बेहद बांका!

खरमौर की तरह इनकी भी संख्या लगातार कम होती जा रही है। लेकिन अगर गोंदिया (महाराष्ट्र) ज़िले के प्रकृति प्रेमियों की तरह हम इन्हें बचाने की ठान लें तो हमें कहना नहीं पड़ेगा कि शायद ही कुछ साल बाद हम इन्हें देख पाएँ...

अगले अंक में

गोंदिया के लोगों की कोशिशों के बारे में सारस की मनमोहक फोटो से सजी एक सच्ची कहानी

पंजीयन क्र. 50309/85 के अन्तर्गत भारत सरकार के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत। डाक पंजीयन क्र. म. प्र./261/ भोपाल/2006-08

गुलज़ार

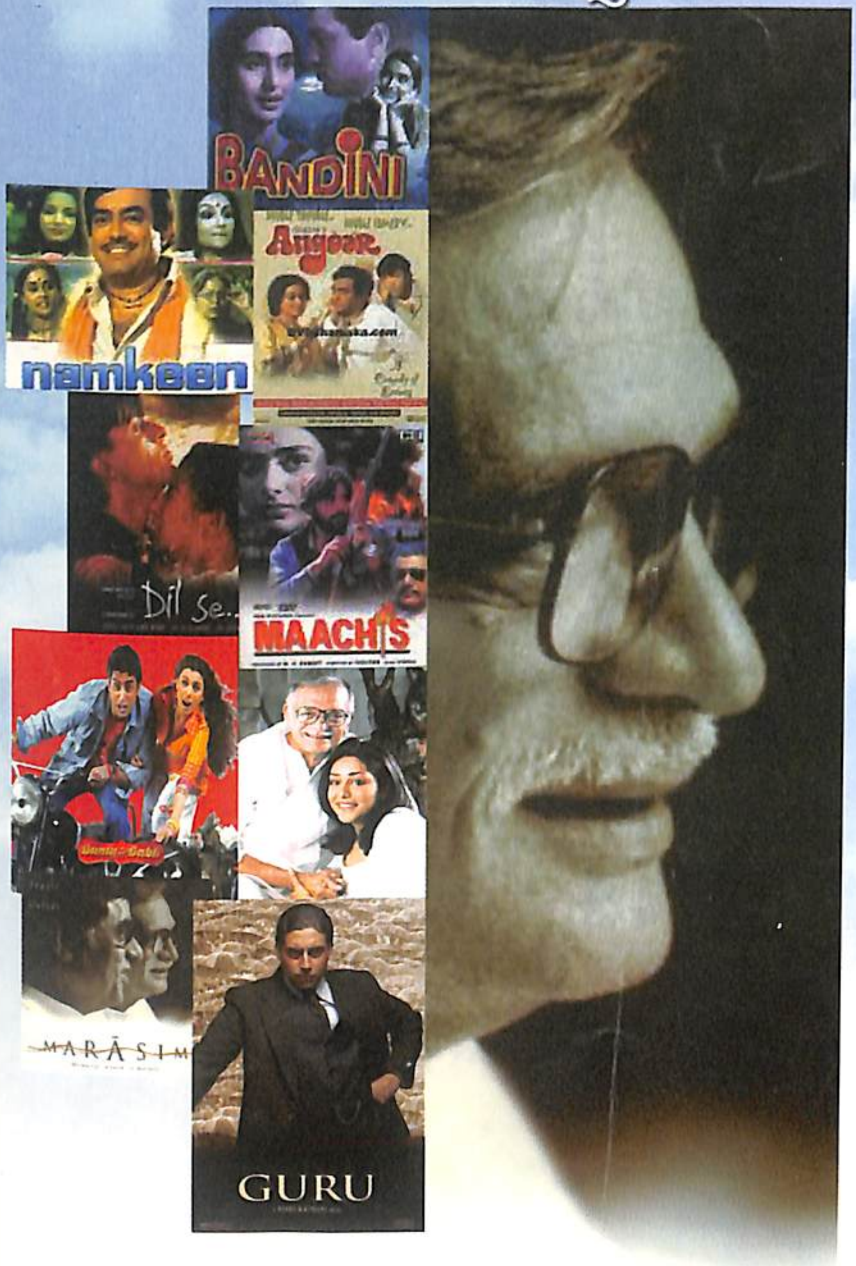

स्कूल से आते हुए, बस्ते में मैंने

स्कूल से आते हुए, बस्ते में मैंने
आम पापड़ की तरह ही तोड़कर
एक टुकड़ा आसमां का रख लिया था।

वो मेरे रंगीन शीशों के ख़ज़ाने में
गुम भी हो जाता था अक्सर...
मैं अँधेरे में टिमकते जुगनुओं से ढूँढ लेता था
वो मेरे साथ रहने लग गया था...
एक टुकड़ा आसमां का।

घिर के आ जाते थे जब बादल
भीग जाती थीं किताबें मेरे बस्ते में
धूप में जब पीठ जलने लगती तो
बस्ता टिकाकर नीम के नीचे
हवा देता था उस को
शोर करते थे परिन्दे मेरे बस्ते में
तो सब टीचर मेरे नाराज़ होते थे!

मैं बाहर रख के आ जाता था बस्ता...
टाँग आता था गिलहरी वाले शीशम पर
या कभी अम्मा के छाबे पर जो गुड़ के सेव देती थी।

किताबें तो बड़ी होती गईं सारी...
वज़न बढ़ता गया उनका
मेरा बस्ता पुराना हो रहा था...फट रहा था
न जाने कब, कहाँ पर गिर पड़ा टुकड़ा वो मेरा आसमां का।

मैं नंगे पाँव चलता हूँ तो पैरों में
बहुत चुभती हैं किरचें आसमां की
वो चूरा हो गया है!!

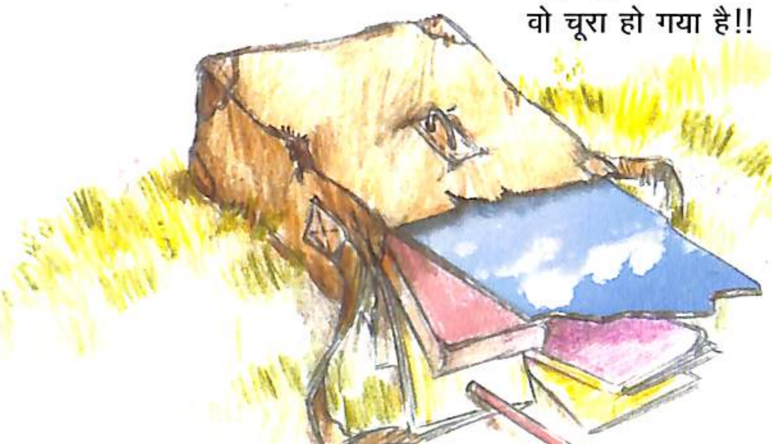

रैक्स डी रोज़ारियो की ओर से निदेशक, एकलव्य द्वारा ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 16 से मुद्रित एवं प्रकाशित।
आर.के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. (0755 - 2687589) से मुद्रित। सम्पादक- सुशील शुक्ल।